स्वर्गीय कवि दौलतरामजी द्वारा विरचित

एवं

परमपूज्य श्री १०८ श्री सूर्यसागरजी महाराज

द्वारा संग्रहीत

विवेक-विलास

सम्पादक

श्री हजारीलाल जैन

एम. ए. (हिन्दी संस्कृत) बी. टी; ए. जे. पी. एच; कोटा

प्रकाशक

श्री लक्ष्मीचन्द्र जी वर्णी

आचार्य श्री सूर्यसागर संघ

प्रथमवार १००० | मकर संक्रान्ति, कोटा वि० सं० २००७ | स्वाध्याय एवं सदुपयोग

विषयानुक्रमणिका

विवेक-विलास

के

जैन-सिद्धांत-संबंधी कुछ पारिभाषिक शब्दों

का

स्पष्टीकरण

१ अनन्त चतुष्टय—अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, एवं अनन्त वीर्य

२ अप्रमत्त विरत—७ वां गुण स्थान जिसमें जीव के संज्वलन और नोकषाय के मंद उदय होने से प्रमाद रहित संयम भाव होते हैं।

३ अपूर्व करण - ८ वां गुण स्थान-जिसमें जीव के उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व परिणाम होते जायें

४ अष्ट मद—जाति, कुल, धन, अधिकार, रूप, बल, विद्या, और तप का मद

५ असाता वेदनीय—ऐसा कर्म जो उदय में आकर दुःख, शोक, ताप, रुदन आदि भोगने का निमित्त बने

६ अन्तरात्मा—ऐसा जीव जो अपनी आत्मा के गुणों की ओर लक्ष्य रखे

७ अन्तराय—वह कर्म जो दान लाभादि मे विघ्न डाले। इसके ५ भेद होते हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय

८ आस्रव--शुभ अशुभ कर्मों के बन्ध के कारण को आस्रव कहते हैं जैसे नाव मे छिद्रो द्वारा जल का आना

९ ईति-भीति—अति-वृष्टि, हीन-वृष्टि, अना-वृष्टि, टिड्डी पडना, मूसों से खेती का नाश, पक्षियों से खेती का विनाश, राज और विद्रोह से क्लेश

१० कैवल्य – ज्ञान की पूर्ण विकसित (निरावरण) अवस्था

११ गुणस्थान--मिथ्यात्व से सिद्धावस्था पर्यंत जीव के भावो की बढ़ती हुई श्रेणियां अथवा मोह और योग के निमित्त से सम्यग्दर्शन,

सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र रूप आत्मा के गुणों की तार तम्य रूप अवस्था विशेष

१२ घातिया कर्म — वह कर्म जो जीव के दर्शन-ज्ञानादि अनुजीवी गुणों का घात करे

१३(अ)तीन चौकरी — अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान और संज्वलन मे मे ३

(आ)दो चौकरी उपर्युक्त मे से २

१४ तीन वेद—स्त्री वेद, पुरुष-वेद एवं नपुंसक वेद

१५ तत्त्वार्थ—मोक्ष मार्ग में आत्मा के हितकारी ७ तत्वों (जीव-अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष) का वास्तविक स्वरूप

१६ देश व्रत—काल की मर्यादा से क्षेत्र का जो प्रमाण दिग्विरति मे लिया जाता है उसमें से प्रयोजन भूत थोड़ा सा रखना जैसे मैं आज अपने घर से बाहर न जाऊंगा।

१७ निर्वेद —संसार-शरीर, भोगादि से वैराग्य भाव

१८ निज परिणति (कषाय रहित) स्वभाविक परिणमन

१९ पारिणामिक भाव— जीव के स्वभाव मात्र भाव को कहते हैं जो उपशम, शम, क्षयोपशम व उदय की अपेक्षा न रखे।

२० पुरुषार्थ – आत्मा के अनन्त चतुष्टय गुणों का सामूहिक बल

२१ पूरणतिथि— मोक्ष अवस्था जिसमें पहुंच कर जीव की भौतिक आयु की समाप्ति हो जाती है

२२ बहिरात्मा—वह आत्मा जो आत्मगुण की ओर ध्यान न देकर संसार, शरीर भोगादि की ओर लक्ष्य रक्खे

२३ मूल गुण—गृहस्थ के ८, साधु के २८ और पंच परमेष्ठी के १४३ आवश्यक या अनिवार्य गुण

२४ वसु कर्म—१ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ वेदनीय, ४ अन्तराय, ५ मोहनीय, ६ नाम, ७ गोत्र, ८ आयु

२५ बादर—वे जीव कहलाते हैं जो पृथ्वी आदिक से रुक जायं अथवा दूसरों को रोकें

२६ विपर्यय—विपरीत निश्चय करने वाले ज्ञान को कहते हैं जैसे-सीप को चांदी जानना

२७ विभाव भाव—सांसारिक निमित्त से आत्मा में अपने गुणों के विपरीत राग द्वेषादि भाव

२८ वेदनीय कर्म—जो जीव के निराकुल अनन्त सुख में बाधक होकर सांसारिक सुख दुख के वेदन में निमित्त हो

२९ सारिम दर्शन—साम्य-भाव, क्षीर-नीर विवेक

३० सूक्ष्म साम्पराय—१० वां गुणस्थान जिसमें जीव की लोभ-कषाय अति-कृश अवस्था को प्राप्त हो जाती हो

३१ सूक्ष्म—वे जीव जो पृथ्वी आदिक में स्वयं न रुकें और न दूसरे पदार्थों को रोकें

३२ क्षायिक सम्यक्—ऐसी आत्म—प्रतीति (सम्यग्दर्शन) जो अनन्तानुबंधी चार कषाय, तथा मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन घात कर्मों के क्षय से प्रगट हो।

३३ ज्ञानावरण—वह गुण जो आत्मा के निर्मल ज्ञान गुण का आच्छादन करे।

परम पूज्य दिगम्बराचार्य श्री १०८
श्री सूर्यसागरजी महाराज

जन्म दिन कार्तिक शुक्ला ६ सं० १६४०
ऐलक दीक्षा आसोज सुदी ६ सं० १६८१
मुनि दीक्षा मगसर वदी ११ सं० १६८१
चातुर्मास कोटा सं० २००७

प्रस्तावना

स्वर्गीय कवि दौलतरामजी काशलीवाल बसवा (जयपुर) सम्वत् १७७७-१८२६ द्वारा रचित "विवेक-विलास" को सम्पादित करने का गुरुतर भार परम पूज्य दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ श्री सूर्यसागर जी महाराज ने मुझ अल्पज्ञ को सौंपकर मुझे गौरवान्वित किया है, यह आपकी मेरे प्रति वात्सल्यता एवं उदारता का द्योतक है। इस अनुपम आध्यात्मिक ग्रन्थ को सम्पादित करने का श्रेय यदि जैन सिद्धान्त के ज्ञाता समाज के किन्हीं सुयोग्य पंडित को दिया गया होता तो मेरी समझ मे समाज के लिये ग्रन्थ अधिक उपयोगी बनता।

परम पूज्य आचार्य श्री ने इसे छपवाने का जब आदेश दिया तो मैंने सोचा था कि इसे लेखक की विस्तृत जीवनी, इसके विषय की विशद

व्याख्या और इसमे आये हुये जैन सिद्धान्त सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों के सरलतम अर्थ देकर इस ग्रन्थ को सर्वोपयोगी बनाने की भरसक चेष्टा करूंगा; किन्तु ग्रन्थ का चतुर्थांश भी नहीं छप पाया था कि पूज्य आचार्य श्री का पुनः आदेश मिला कि हम सघ समेत ८-१० दिन में ही फिरोजाबाद में माह फरवरी के आरम्भ मे होने वाले दिगम्बर साधुओं के सम्मेलन के लिये चल देंगे। इस आदेश ने मेरे सब मनसूबों को दबा दिया और इस ग्रन्थ को शीघ्र से शीघ्र छपवा देना मात्र ही मेरे सामने उद्देश्य रह गया।

स्वर्गीय कवि दौलतराम जी पद्मपुराण, आदि पुराण, हरिवंश पुराण, परमात्म-प्रकाश, पुण्याश्रव व पं० टोडरमलजी कृत अधूरी पुरुषार्थ सिध्युपाय की वचनिका एवं क्रिया-कोश-छन्द अध्यात्म बारहखड़ी छन्द आदि के कर्ता हैं। ये छह ढाला और आध्यात्मिक पद संग्रह के रचयिता पं०

दौलतराम जी पल्लीवाल से भिन्न है। आप से जैन समाज के स्वाध्याय प्रेमी बन्धु सुपरिचित है। आपने ढूंढारी भाषा में जो हिन्दी, राजस्थानी एवं ब्रज-भाषाओं का सम्मिश्रण सा है, इस आध्यात्मिक ग्रन्थ को २४ मात्राओं वाले दोहा छन्द में लिखा है। इस छोटे से छन्द मे आपने आध्यात्मिक भावों को स्पष्टता एवं चतुरता से सजाया है और वे इसमें ११७ दोहे रचकर कहां तक सफल हुये हैं इसे आध्यात्म-प्रेमी स्वाध्याय शील बन्धु स्वयमेव ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ कर जान सकेंगे।

किन्तु यह जानकर मुझे अत्यन्त खेद एवं आश्चर्य हुआ कि भारतवर्ष जैसे देश मे ऐसा आध्यात्मिक रत्न अब तक अंधकार में कैसे पड़ा रहा। जहां इन कवि महोदय की अन्याय कृतियां प्रकाशित होकर स्वाध्याय प्रेमियों के कंठ का हार बन रही है वहां इस ग्रन्थ का अब तक प्रकाशित

न होना हमारी उस उपेक्षा की मनोवृत्ति का सूचक है जिसके कारण हम प्रकाशित न होने योग्य रचनाओं को तो महत्व दे देते हैं और ऐसे ग्रन्थ मणियों की ओर ध्यान भी नहीं देते। दूसरी बात यह है कि खोज के अभाव मे कल्याणकारी एवं बहुमूल्य जैन साहित्य के अनेकानेक ग्रन्थ रत्न अभी तक दीमकों एवं चूहों के भोजन बनकर धनियों की सन्दूकों तथा तिजोरियों की कारा में पड़े प्रकाश मे आने के लिये छटपटा रहे है। हमारे बन्धुओं का सर्व प्रथम कर्तव्य है कि भारत के इस स्वतन्त्रता के युग मे इन ग्रन्थों को अब अपनी कारागार मे अधिक काल तक रखकर पाप के भागी न बनें और साहित्यिक बन्धुओं को भी अनुसन्धान की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त होना चाहिये जिससे इस प्रकार के अमूल्य जैन ग्रन्थ प्रकाशित हो कर हिन्दी साहित्य की भी अभि-वृद्धि करें।

यह ग्रन्थ आध्यात्मिक-भावों का एक ऐसा स्रोत है जिसमें डुबकियां लगाकर पाठक का हृदय स्वरस में मग्न होकर आनन्द विभोर हो जाता है। उसमे प्रतिपादित विषय को पढ़ कर प्रत्येक मुमुक्षु को आत्म स्वरूप का ज्ञान हुए बिना नहीं रहेगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। कवि ने निज-वन, भव-वन, ठग-ग्राम, मान-गिरि, भव-कूप, बहिरात्मा-स्वरूप आदि और इनके विपरीत निज-धाम, आत्म-सागर, भाव-समुद्र, ज्ञान-गिरि, निज गंगा, रस-कूप, ज्ञान-वापी, अन्तरात्मा-ज्ञान राज आदि सुन्दर, एवं आकर्षक शीर्षक देकर उपमा, रूपक उदाहरण एवं दृष्टांत अलकारों द्वारा गूढ़ विषय को सरल और सुस्पष्ट करने की चेष्टा की है। एक ओर उन्होंने मसव्यसन, क्रोध.मान-माया-लोभ, छल-कपट-दम्भ, मिथ्यात्व, अज्ञान, अविद्या कुबुद्धि, मोह आदि का प्रसार दिखा कर संसार का भयंकर, आत्मा को उलझाने वाला, और कुत्सित रूप प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर विवेक, आत्म-

बोध, साम्य-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वैराग्य, संयम शौच, ब्रह्मचर्य आदि का ललित एवं मनमोहक वर्णन करके बहिरात्मा को अन्तरात्मा बनाकर परमात्मा बनने का स्पष्ट मार्ग बताया है। बीच बीच में संवादों की रचना करके उन्होंने अपने भावों को स्पष्ट किया है। एक संसारी आत्मा किंकर्तव्य विमूढ़ होकर मोक्ष मार्ग का पथ श्री गुरु से पूछती है :—

स्वामिन यह संसार है, अति असार भ्रम-जार।
भरमूं तामे मोह वश, लहूं न भव जल पार॥
कैसे पहुंचू निजपुरा, भ्रमण मिटै किम नाथ।
मोह पांस टूटै कबै, अवलोकूं निज साथ॥
सो उपाय भाखो प्रभू, तुम हो करुणा सिन्धु।
लूट सके नहिं मोह खल, छूट जाय सब बंध॥

उत्तर में संसार दशा का कारण श्री गुरु कहते हैं :—

तूं अनादि बंध्यो भया, भ्रम कर भव के माहि ।
निज स्वरूप निज भाव तज, तैं अवलोके नाहि ॥
सुबुद्धि महाराणी शुभा, पतिवरता परवीन ।
ताकि तोहि न सुधि कछु, ता बिन तूं अति दीन ॥
है प्रबोध मंत्री महा, ताको तोहि न भेद ।
इक छिन मे सो साहसी, करे करम दल छेद ॥

फिर कवि संसारी आत्मा के कार्य को एक कुराज का रूप देकर अन्त में सुराज की स्थापना करने का मार्ग बतलाते हुये वे लिखते हैं :—

करै राज बेढंग तूं, निज पर की सुधि नाहिं ।
अविवेकी अज्ञान तूं होय रह्यो भव माहि ॥
छोड कुबुद्धि का संग अब मेल्हि मोह के पाहिं ।
निज बश कर मन चपल कों ठाठ कुभाव उठाहि ॥
धरती काढि विभाव की, काम क्रोध को ठेलि ।
तोर मोह की फांसि अब, तज कुबुद्धि की केलि ॥
सम्यक गढ मे वास कर, तेहु सुबुद्धि बुलाय ।
करहु दूरि मंत्री कुमन, ज्ञान मंत्रि ठहराय ॥

करि विवेक को राजगुरु, पापहि तुरत उथाय।
प्रोहित पद दे धर्म को शुद्ध स्वभाव सथाय।
सैन्यापति तप संयमा, भट करे अपने भाव।
निज प्रभाव उमराव कर, यह उपाय है राव॥

आगे शुभाचार रूपी कोतवाल रख, सम्यग्दर्शन रूपी नेत्रों को खोलकर, सम्यक्चारित्र वाले व्यक्तियों का सत्समागम करके और सद्गुरु की आज्ञा को सदैव पालन करते हुये इस प्रकार प्राप्त राज्य को अचल अटल एवं सुखमय बनाने की शिक्षा भी देते हैं जिससे कठिनाई से स्थापित यह राज्य मोह-ममता आदि शत्रुओं द्वारा नष्ट न कर दिया जावे।

इस प्रकार एक स्थल पर महान बलवान मोह रिपु को अपने ही गढ़ में सदल बल मारने का सरल एवं स्पष्ट उपाय बतलाते हुए कवि लिखता है—

अव्रतपुर अरु देश-व्रत, इन माहि गढ़ रारि।
परमतपुर आगे प्रगट, लेहि मोह को मारि॥

कैसे मारें मोह को, सो तुम सुनहु उपाय।
अप्रमादपुर में हयौं, सुर नारक तिर आय॥
भाव अपूरव-करण पुर, तहां हने हास्यादि।
अनिवृत्तापुर में हयो, वेद तीन संडादि॥
पाछें सूक्ष्म क्रोध अर, मान कपट रिपु काटि।
सांपराय सूक्ष्म धरा, लेय मोह दल दाटि॥
सूक्षम लोभ पछारकै, पूरो पारे मोह।
भंग होहि भूपाल पै, रावम रागर द्रोह॥
क्षीण कषाय जतीपती, क्षीण मोह मुनि राज।
हते विघन को बेग दे, सजै सिद्धि के साज॥

(अन्तरात्मा ज्ञान वर्णनम्)

तनिक कवि द्वारा प्रस्तुत ज्ञान-समुद्र की झांकी लीजिये और देखिये कि कवि ने कैसा सच्चा अनुभव गोचर रूपक बांधा है। संसार रूपी अथाह समुद्र में बहती हुई नाव बिना वैराग्य रूपी वायु के सहारे पार नहीं लग सकती और सम्यग्दृष्टि रूपी नाविक ही ऐसी नाव में बैठ कर संसार समुद्र पार पहुंचने का अधिकारी है।

अध्यातम विद्या जिसी, और न उत्तम नाव।
पार उतारे सो सही, वायु विराग प्रभाव॥

× × ×

बैठनहारे नाव के सम्यग्दृष्टि धीर।

× × ×

हम अपने को पहिचानें तो सही, हमारा आत्म समुद्र उन सब अमूल्य निधियों से भरा पड़ा है जिनको मृग तृष्णा सदृश खोजने के लिये संसार मे अनेकों बार चक्कर लगाते हैं और न मिलने पर दुःखी होते हैं :—

यह सर सत्ता माहि है, उठै लहर आनन्द।
वस्तु न दूजो जा विषै, केवल परमानन्द॥

हमने अपने स्वरूप को भूल कर पर वस्तुओं और विभाव भावो को अपना मान रक्खा है। जब हमने उल्टा मार्ग अपना लिया हो तो अपने घर कैसे पहुंच सकते हैं। कवि ने उपमालङ्कार के द्वारा

संसार के सब दुखों को विभाव-भाव-परिणति में क्रोध और अज्ञान के अधीन बताकर इनको छोड़ने की ओर संकेत किया है :—

तामस सो नहिं तिमिर है, राजस सम रज नाहि ।
यह राजस तामस मई, सब दुख याके माहि ॥
(विभाव समुद्र व०)

हम अज्ञान भाव के कारण संसार के सच्चे स्वरूप को नहीं समझते बाह्य धन धान्यादि को चुराकर परिग्रह भूत से छुड़ा कर हमारे कल्याण करने वाले व्यक्तियों को तो हम चोर और डाकू कह कर पुकारते हैं किन्तु वास्तविक चोरों और अपने सच्चे धन को नहीं पहिचानते । वास्तव में कुभाव ही चोर हैं और सच्चा ज्ञान ही हमारा शाश्वत धन है । इस सत्य को कवि उपमा द्वारा प्रकट करता है–

ठग नहीं जग के भाव से, ठगें ज्ञान सो माल ।

× × ×

कवि ने चारों गतियों के स्वरूप का वर्णन करके मनुष्य गति को सप्रमाण सर्वोत्कृष्ट सिद्ध किया है और मनुष्य जीवन में भी कमल पत्र के समान जीवन बिताने का उपदेश दिया है। जिस प्रकार कमल कीचड़ मे पैदा होकर भी उससे ऊपर निर्लिप्त रहता है उसी प्रकार मनुष्यों को भी संसार में उत्पन्न होकर अपने कर्तव्य करते हुये विराग भाव से रहकर ग्रन्थ मे बताये हुये लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति की ओर सदैव अग्रसर होते रहना चाहिये।

इस प्रकार के सुन्दर सुन्दर भावों से समस्त ग्रन्थ ओत-प्रोत है। अनेक स्थलों पर भिन्न-भिन्न विषयों के लम्बे-लम्बे रूपक बांध कर कवि ने अध्यात्म जैसे गूढ़ विषय को सरल एवं सुस्पष्ट कर दिया है।

अधिक विशद व्याख्या का लोभ संवरण करके कवि के द्वारा प्रतिपादित विषय के मार्ग को निम्न संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है —

नाम	बहिरात्मा संसारी	अन्तरात्मा यति-मुनि,	परमात्मा जिनेन्द्र
अवस्था	अव्रत	एक देश व्रत-एवं महाव्रत	मुक्त
भाव	अशुभ	शुभ	शुद्ध
स्थान	अव्रतपुर	देश व्रतपुर	परमतपुर

ऐसा मार्ग पकड लेने पर कवि के शब्दों में—

निज दौलत अनुभूति है, ताहि विलसवे काज।
छोडे राज विभूति सब, सो पंडित सिरताज॥

प्रत्येक संसारी आत्मा मुक्त होकर इस संसार के भ्रमण से सदा के लिये छुट्टी पा सकता है। यदि ऐसे ग्रन्थ को पढकर, मनन और अनुभव करके बन्धुओं ने कुछ भी लाभ उठाया तो मैं अपने इस परिश्रम को सफल मानूंगा।

इसका संग्रह अनेक पदवी विभूषित जैन धर्म वत्सल, दानवीर, सर, सेठ हुकमचन्द्रजी सा० के यहां रचित सं० १८२७ फाल्गुन वदी ८ गुरूवार

की लिखी हुई मूल प्रति की पूज्यपाद आचार्यवर ने प्रतिलिपि करवा और उनके एवं श्री लक्ष्मीचन्द्र जी वर्णी द्वारा चातुर्मास इन्दौर सं० २००९ में तैयार की हुई प्रति से मैंने संपादन किया है। कवि के मूल भावों और भाषा को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न करते हुये भी यत्र तत्र शब्दो मात्राओं आदि मे कुछेक परिवर्तन करने पड़े हैं। खेद है शीघ्रता के कारण मूल प्रति से इसे मिलाने, शुद्ध करने का अवसर नहीं मिल पाया है और जैसा मैंने ऊपर संकेत किया है पूज्यपाद आचार्य श्री के शीघ्र विहार कर जाने के फल स्वरूप अल्पतम अवशेष अवकाश मे जैसा मुझसे कुछ प्रयत्न हो सका स्वाध्याय प्रेमी बन्धुओं के लिये यह ग्रन्थ प्रस्तुत कर रहा हूं। पुस्तक मे आये हुये साहित्यिक एवं प्रान्तीय क्लिष्ट अथवा अप्रचलित कुछेक शब्दों के फुटनोटो के रूप में अर्थ देने का प्रयत्न किया है और आरम्भ मे जैन सिद्धान्त सम्बन्धी कुछ

पारिभाषिक शब्दों को स्पष्ट करने की चेष्टा भी की है। ऐसा करके ग्रंथ को कितना सुगम बना सका हूं मैं नहीं अनुभव कर सकता।

इस पुस्तक को प्रस्तुत करने मे पूज्यपाद् आचार्य जी महाराज की प्रेरणा, सहायता, एवं मार्ग-प्रदर्शन तो पर्याप्त मात्रा में मिला ही है साथ ही इसके शीघ्र प्रकाशन में श्री वर्णी जी का सहयोग भी नहीं भुलाया जा सकता। भूमिका लिखने में मेरे परम प्रिय एवं सुयोग्य शिष्य श्री युगलकिशोर जी जैन ने भी सत्परामर्श दिया है। इसमें बृहत्त जैन शब्दार्णव एवं जैन सिद्धान्त प्रवेशिका नामक पुस्तकों से भी सहायता ली गई है। अतः मै इन सब महानुभावों एव उन पुस्तकों के रचयिताओं का अत्यन्त आभारी हूं।

अन्त मे मैं यह लिख देना भी अपना कर्तव्य समझता हूं कि मेरे जीवन में किसी विद्वान लेखक

की कृति का सम्पादन करने का पहला ही अवसर है मुझमें जैन सिद्धान्त विषयक अपेक्षित ज्ञान का भी अभाव है, किन्तु पूज्यपाद आचार्य श्री के कोटा चातुर्मास काल मे कुछ काल श्री चरणों मे बैठकर उनके उपदेशामृत को पान करने का सुअवसर मिला है। इसी सम्बल को पाकर यह कार्य सम्पादित हो सका है। ग्रन्थ में मूल प्रति की अनुपलब्धि समयाभाव, प्रेस और मेरी अज्ञानतावश जो भूलें हुई हों उन्हें स्वाध्याय प्रेमी बन्धु सुधारने का कष्ट करें।

कोटा
पोष शुक्ला ३ बुधवार
सं० २००७

विनीत,
हजारीलाल जैन

श्री

१५११

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

पं० श्री दौलतराम जी सा० द्वारा विरचित

एवं

श्री दिगम्बर निर्ग्रन्थ जैनाचार्य

श्री १०८ श्री सूर्यसागरजी महाराज द्वारा संगृहीत

विवेक-विलास

प्रणामि परम रस शांत को, प्रणमि परम गुरुदेव।
वरणों सुजस सुशील को, करि शारद की सेव ॥१॥
शील व्रत को नाम है, ब्रह्मचर्य सुखदाय।
जाकर प्रगटे ब्रह्मपद, भव वन भ्रमण नशाय ॥ २ ॥
ब्रह्म कहावे जीव सहु, ब्रह्म कहावे सिद्ध।
ब्रह्म रूप केवल महा, ज्ञान सदा परसिद्ध ॥ ३ ॥
ब्रह्मचर्य सम व्रत ना, न पर ब्रह्म सो कोय।
व्रत न ब्रह्म लवलीन[1] सो, तिरे भवोदधि[2] सोय ॥४॥

---

1 मगन 2 संसार-समुद्र

विद्या ब्रह्म विज्ञान सी, नहीं जगत में ज्ञान ।
विज्ञ नहीं ब्रह्मज्ञ से, यह निश्चय परवान[1] ॥ ५ ॥
ब्रह्म वासना सारखी,[2] और न रस की केल ।
विषय वासना सारखी, और न विष की बेल ॥६॥
आतम अनुभव सिद्ध सी, और न अमृत बेल ।
नहीं बोध सो बलवता, देय मोह को ठेल ॥ ७ ॥
अध्यातम चर्चा समा, चर्चा और न कोय ।
अर्चा जिन अर्चा समा नहीं जगत में होय ॥ ८ ॥
चर्चा कारक लोक में, नहि गणधर से धीर ।
अर्चा कारक इन्द्र से, नही दूसरे वीर ॥ ९ ॥
लोक न चेतन लोक सो, विश्व विलोकन रूप ।
निज अवलोके निज विषें, केवल तत्त्व स्वरूप ॥१०॥
परकाशक द्यु निधार को, अति देदीप्य जु भान ।
भाव सोइ निज दीप है, भरयो अनंत निधान॥११॥
विश्व प्रकाशक भाव में, दीप न सुख की खान ।
क्षेत्र न कोई स्वक्षेत्र सो, अक्षय अभय प्रवान[3]॥१२॥

---

१ दृढ २ समान ३ स्थिर–निश्चित

खण्डन भाव अखण्ड सो, परमानन्द निवास।
स्वयं प्रदेश सो देश नहि, जहां अनन्त बिलास ॥१३॥
पूर्ण अभय पुर मारखो, जहां काल भय नाहिं।
निराकार निज रूप सो, नृप घर नाहिं कहाय।१४॥
पुर पति निज चिद्रूप[1] सो, और न दूजो भूप।
पुरपति पटरानी महा, सत्ता सी न स्वरूप॥ १५॥
शक्ति अनन्तानन्त सो, अन्तःपुर नहि कोय।
महिमा अतुल अपार सो, सखी समूह न जाय।१६
सखा न समरस भाव सो, एकी भाव लखाय।
पासवान परिणाम से, नाहीं जगत के माहिं॥१७॥
निज विशेषता शुद्धता, अति अनन्तता कोय।
बहु विस्तीरणता सदा, तासम मैन न होय॥१८॥
अति प्रतापमय भाव जे, महा प्रभाव स्वरूप।
उमराव न तिन सारखे, अद्भुत अचल अनूप।१९॥
नहीं प्रधान निज ज्ञान सो, व्यापक सब में सोय।
नहिं प्रोहित[2] आनन्द सो, धम मूर्ति जो होय॥२०॥
नहीं अनन्त धीरज जिसो[3], सेनापति जय रूप।
अगम अगोचर भाव सो, और न दुर्ग अनूप॥२१॥

---

१ आत्म-ज्ञान २ पुरोहित ३ जमा।

नहि गम्भीर स्वभाव सी, खाई अति गम्भीर।
निश्चल अजित स्वभाव से, दुर्गपाल नहिं वीर ॥२२
द्वार न आतम ध्यान सो, अध्यातम को सार।
निरवृत्ति रूप अनूप है, जग प्रवृत्ति के पार ॥२३॥
भाव अमेद्य अछेद्य से, और न कोई कपाट।
दर्शन बोध चरित्र सो, और न दूजो वाट ॥ २४ ॥
भाव अनन्त चतुष्टया, तिसे[1] न चौहट और।
व्यापारी न स्वभाव से, नहि पुर में फकझोर ॥२५॥
शुद्ध परिणमन सारखो, व्यापार न है वीर।
अविनश्वरता भाव सो, धन अटूट नहिं धीर ॥२६॥
गुण परणति पर्याय निज, नाना भाव स्वभाव।
परजा तिन सम और नहि, द्वैत न भाव लखाय॥२७
भावन के ही प्रभाव जे, अति प्रभाम मय जेहि।
तिसे न परजा वर विमल, अति सुख पूरण तेहि ॥२८
भरयी भाव सो पुर महा, वसे जगत के कूट।
ईति भीति नहिं पुर विषै, नहीं कपट अरु कूट ॥२९॥
निज अवकाश बराबरी, और न है दो रास[2]।

---
[1] इस समान [2] दो जाति

निज उद्योत विकास सो, राज तेज नहिं भास ॥३०॥
सुर नर नारक पशुन के सब ही रूप विरूप।
विघट जाय छिन एक में, जामन मरण स्वरूप ॥३१
वस्तु अनूप समान को, और न रूप अनूप।
निज पुर माहिं अरूप सब, जहां न कोई कुरूप ॥३२
मूरत मूरत पाक नहीं, जगत जीव की कोय।
धूरत भाव धरे महा, रागादिक वश होय ॥ ३३ ॥
आतम भाव अमूरता,[1] अद्भुत सूरतिवंत।
राजा परजा एक से, जहां न भेद कहंत ॥ ३४ ॥
आतम राजा गुण प्रजा, और न राजा रयैति[2]।
शस्त्र न भाव प्रचंड सो, जाकर नृप की जैति[3] ॥३५
प्रबल स्वभाव बराबरी, कोटपाल नहिं कोय।
चोर न मन इन्द्रीन से, तिनको नाम न होय ॥३६॥
चोरी होय न पुर विषै, जहां न कोई चोर!
चोरी जारी नाहिं कछु; होय न कबहु सोर ।३७॥
सार भूत निज वस्तु सो, और न नृप भंडार।

---

१ अमूर्तिकता, २ रैय्यत (प्रजा) ३ जय।

भंडारी अस्तित्व सो, और न अर्थ सुधारु ॥३८॥
नहीं धनी सो दूसरो, सदा धनी के पास।
सब सामग्री जाकने[1], महा सुखन की रासि ॥३९॥
शुद्ध पारणामीक सा, नहीं पारसद[2] कोय।
कदे[3] न छांडे नृप सभा, सदा हजूरी सोय ॥ ४० ॥
क्षायिक सम्यक् सारखा, नहीं महा बडभाव।
राज शुद्ध भावान को, करे निकंटक राव ॥ ४१ ॥
बाधा रहित स्वभाव सो, अंग रक्षक नहि वीर।
नित्य निरंतर भाव से, मित्र न कोई धीर ॥ ४२ ॥
श्रेष्ठो श्रेष्ठ स्वभाव सो, नहिं दूसरो और।
शोभा पुर की जाथको[4], चोहट को सिरमौर ॥४३॥
सर्वोत्तम निज भाव सो, नहिं सिंगासन कोय।
तापर राजे राजई, सबको नायक सोय, ॥ ४४ ॥
आतप हरण स्वभाव से, छत्र न कोई जान।
निरमल भाव तरंग से, चमर न दूजे मान ॥ ४५ ॥

---

१ जिसके पास २ सभासद ३ कभी
४ जिसके कारण

चेतनता निज चिन्ह से, नहीं निशान परवान[1] ।
विश्व विहारी भाव से, अश्व न और बखान ॥४६॥
मगन लहा गलता न जे, अति उत्कृष्ट स्वभाव ।
तिमे न मत्त मतंगजा[2], धारे अतुल प्रभाव ॥ ४७ ॥
रथ नहि तस्वारथ जिसे, पुरुसारथ तिन माहि ।
परमारथ परिपूर्ण जे, यामे संशय नाहि ॥ ४८ ॥
अनुचर अतिशय से नहीं, विचरे विश्व मंझार ।
नहि शिवका[3] शिव भावसी थिर अर सकल विहार ॥४९
सुख न अतीन्द्री सारखो, सो सुख जहां अनंत ।
दुख को नाम न दीसहि, जहां देव भगवन्त ॥५०॥
दुख नहि इन्द्री भोग सो, ताको तहां न लेश ।
केवल परमानंदमय, बसें देश अशेस[4] ॥ ५१ ॥
आतम अनुभव अमृता, तिसो न अमृत आन ।
खान पान नहि ता समा, यह निश्चय परवान ॥५२
भोजन तृप्ति समान नहि, सदा तृप्त वह देश ।
स्वरस सुधारस पीय जो, नहि तृष्णा को लेश ॥५३॥

---

१ निश्चल २ हाथी ३ पालकी ४. सम्पूर्ण

क्षुधा तृषा बाधा नहिं, नहीं काल को जोर।
जन्म जरा मरणादि नहि, नहीं रैन नहीं भोर ॥५४॥
रागादिक रजनीचरा[1], तिन को नहिं संचार।
मोह पिशाच न पुर विषै, रोग न शोक लगार ॥५५॥
काम लोभ परपंच ठग, तिनको तहां न नाम।
बसे महां सुख सो सबै, आनंदी अभिराम ॥ ५६ ॥
धर्म न वस्तु स्वभाव सों, धर्म रूप पुर सोय।
राजा परजा धर्म मय, नाही अधर्मी कोय ॥ ५७ ॥
त्याग न सकल परत्याग सो, त्यागी सब ही भाव।
रागी कोय न दीसहि, वीतराग है राव ॥ ५८ ॥
शील न विमल स्वभाव सो, जो अति उज्ज्वल रूप।
शील रूप राजा प्रजा, नाहीं विकार स्वरूप ॥५६॥
तप नहिं वांछा रहित सो, तहां न वाँछा होय।
भाव अनंत अपार है, जहां कुभाव न कोय ॥६०॥
निज भावन की रम्यता[2], बहु मनोग्यता[3] जोय।
ता सम नंदन वन नहीं, निज उपवन है सोय ॥६१॥

---

१ राक्षस २ सुन्दरता ३ आकर्षण

कहै अमर वन सूत्र में, ताको नाम मुनीस।
रमे अमर वन में सदा, चिदानन्द जगदीश ॥ ६२ ॥
सघन स्वभाव निसारखें[1], अमृत वृक्ष न और।
ता वन में ते लहलहैं[2], रमै राव सिर मौर ॥६३॥
रही वेल विस्तरि, जहां शुद्धातम अनुभूति।
ता सम नाहि सुधा लता, केवल भाव विभूति ॥६४॥
परम स्वभाव पीयूष फल निज रस पूरण जेहि।
तिन से नाहि सुधा फला, फलिनु रहे अति तेह ॥६५
सदा प्रफुल्लित भाव से, फूल न और सुगन्ध।
फूल रहे महिके महा, राजे राव अबन्ध ॥ ६६ ॥
वृक्ष बलि फल फूल ये, तिन कर वन अति रम्य।
जहां न गम्य विभाव की, वस्तु न एक अरम्य[3] ॥६७
माया बेलि न है तहां, जहां न विकलप जाल।
क्रोधादिक कटक नहीं, निजवन महा रसाल ॥६८॥
नाहि शुभाशुभ कर्म से विषतरु विश्व मंझार।
तिन को लेश न है जहां, दुख फल नाहि लगार।६९

---

१ समान २ पल्लवित ३ असुन्दर

दुख फल से नहि विष फला, देय जगत को पीर।
मान फूल से फूल विष, तहाँ न जानो वीर ॥७०॥
सुख सरवर सा सर जहाँ, भरो सहज रस नीर।
तरुवर सघन स्वभाव से, तहां विराजे धीर ॥७१॥
केवल कला कलोलिनी, वहै निरन्तर शुद्ध।
क्रीडा करै महा सुखी, राजे राजा बुद्ध ॥७२॥
अथक स्वभाव पयोनिधि, स्वच्छ महा गम्भीर।
तिसो[1] न सागर क्षीर है, रमे गुणाम्बुधि वीर ॥७३
अति उद्दाम विलास मय, आतम शक्ति प्रकाश।
ता सम लीला और नहीं यह भाषे जिनदास[2]॥७४
अचल उच्च थिर भाव सो, क्रीडा गिरि, नहिं कोय।
क्रीडा करे कला निधि, जगत शिरोमणि सोय ॥७५
ज्ञान चेतना परिणति, निज शक्ति बहुनाम।
तासों कमला बुध कहें, और न कमला नाम ॥७६
सिद्ध अनन्ता सर्व ही, राज करें या रीत।
निज निज भाव प्रजा सहित, विलसे सुख जगजीत।७७

---

१ तैसा-उस समान २ जैन धर्म के भक्त

जहां न जन्म जरा मरण, जहां न इष्ट वियोग।
रोग न सोग न भोग तन, नहीं अनिष्ट संयोग॥७८
भूख न प्यास न पाप पुन्य, त्रिविध[1] ताप नहिं कोय।
चिद्रूपा आनन्द धन, वस्तु अमूरत होय॥ ७९॥
नारि न पुरुष न पंड[2] को, नाहिं तृषातुर कोय।
लोक शिखर निज क्षेत्र में, शुद्ध शिद्ध अवलोय॥८०
रहित नाम बहु नाम जे, रहित रूप अति रूप।
ते हम को निज बोध द्यो, चिदा नंद चिद्रूप॥८१
लघुता गुरुता रहित जे, सदा अगुरु लघु जान।
सिद्ध अनन्ता सर्व सम, तिन मे और न मान॥८२॥
ते भगवन्त जिनेश्वरा, तेही महेश्वर देव।
शुद्ध बुद्ध योगीश्वरा, करें सुरासुर सेव॥ ८३॥
सर्व व्यापका विश्र ते[3], भजें ति हे सुर राय।
लखें ज्ञेय को ज्ञान मे, तातें कृष्ण कहाय।८४॥
सकल वस्तु अवलोकयो[4], रहियो सब तें भिन्न।

---

1 देही-देह सम्बन्धी, दैनिक-भाग्य सम्बन्धी; भौतिक-पंच महाभूत सम्बन्धी 2 नपुंसक 3 प्रसिद्ध 4 देखना

वमयो आतम भाव में, कबहु खेद न खिन्न ॥८५॥
शिव कल्याण स्वरूप तें, परंब्रह्म प्रत्यक्ष।
सदा परोक्ष अज्ञान को, ताते कहे अलक्ष ॥८६॥

ईश्वर समरथ सार जे, परमातम परवीन।
गुनत सर्वगत विमलतें, घट घट अन्तर लीन ॥८७॥
परम पुरुष परधाम ते, परम ज्ञान भगवान।
महादेव महिपाल ते, महाराज गुणवान ॥ ८८ ॥

रहित रजो गुण रावजे, रहित तमोगुण भाव।
रहित शुभाशुभ संत ते, निरगुण है निरदाव ॥८९॥

महा महन्त अनन्त ते, सर्व गुणिन के नाथ।
गुण पर्याय स्वभाव गण, सदा धरयां निज साथ ॥९०
रम जो रहे निज भाव मे, ताते तिनको राम।
कहिये सूत्र सिद्धांत में, रहित क्रोध अर काम ॥९१॥

तीन भुवन के चन्द तें, तीन भुवन के सूर।
तीन भुवन के नाथ ते, गुण अनन्त भरपूर ॥ ९२ ॥
जैसे चिन्तामणि बहुत, सबको एक स्वभाव।
तैसे सिद्ध अनन्त हो, समभावा दर्शाव ॥ ९३ ॥

भये अनन्ता सिद्ध प्रभू, होसी[1] सिद्ध अनन्त।
सबको मेरी बंदना, सेवे साधु महन्त ॥ ९४ ॥
करें आप सम दास को बडे गरीबनिवाज।
रहित कामना कल्पना, भजें जिन्हें मुनिराज ॥९५ ॥
निज-दौलत[2] विलसे सदा सदा प्रभु निज रूप।
बसे भावपुर में प्रगट, परमानन्द स्वरूप ॥ ९६ ॥
नाम भावपुर को भया, कहै अभयपुर साध।
बसे शाश्वतो सुख मई, जहां न कोई व्याधि ॥९७
निश्चय वास स्वभाव मे, व्यवहारे जगदीश।
उपचारे[3] घट घट विषे, व्यापक सदा अधीश ॥९८
सबको सादृश भाव है, तातें एक ही ईश।
कहिये ग्रन्थन के विषें, चिदानंद जगदीश ॥ ९९ ॥
है अनन्त सब एक से, तातें एकहि ध्यान।
करें महा मुनि भाव सों, ते पावें निज ज्ञान ॥१००
सिद्धि भक्ति यह भाव धर, पढ़े सुने नर नारि।
ते निर्वेद दशा लहें, जिन आज्ञा उर धारि ॥१०१॥

---

१ होंगे २ आत्म गुण ३ उपचार दृष्टि से

निश्चय देव निजातमा, व्यवहारे गुरुदेव।
तिरें भवोदधि ते नरा, करें निजातम सेव ॥१०२॥
जैसे चेतन राव सो, और न दूजो राव।
तैसे व्रत मे शील सो, और न कोई कहाव ॥१०३॥

इति निज धाम निरूपणम् ॥

ठग ग्राम का वर्णन

ग्राम ठगनिके तें प्रभू, काढे त्रिभुवन राय।
पहुंचावे निजपुर विषे, ताहि नमूं सिर नाय ॥१॥
हे जन तू जिन[1] जग रमे, ये हैं ठगन को ग्राम।
ठग मोहादि अनन्त हैं, कौलग[2] कहिये नाम ॥२॥
मोह महा बंचक कुधी[3], सकल ठगन को राव।
ठगे कर्म ठग सबन को, मोह राव पर भाव ॥ ३ ॥
मोह फांस सी है नहीं, फांसी जग में आन।
दे फांसी जग जीव के, हरे मोह गुण प्रान ॥ ४ ॥
नहीं मोह निद्रा जिसी, दीरघ निद्रा कोय।
सोवे जब जग मोह वश, ज्ञान चेतना खोय ॥ ५ ॥

---

१ जिस २ कहां तक ३ कुबुद्धि

मोह प्रिया ममता महा, तिसी न ठगनी कोय।
ठगे सुरेन्द्र नरेन्द्र को, महा मोहनी सोय ॥ ६ ॥
माया चारी मोह ठग, इसो न जगत मझार।
मोहे महा मुनीनि कों, सुरनर कहा विचार ॥ ७ ॥
बड़े ठगन मे दोय ठग, राग द्वेष विडरूप[1]।
तिनके भुज परताप ते मोह जगत को भूप ॥८॥
राग समान न राग कर, और शिकारी कोय।
बसि कर सुर नर पशुन को, मारे पापी सोय ॥९॥
हरे ज्ञान से प्राण जो, हरे ध्यान सों माल।
लेय कपट अरु कालिमा, करे बहुत बे हाल ॥१०
राग प्रिया जु सरागता[2], जाहि कहें जग प्रीति।
जासों करि अप्रतीति मुनि, होहि मुक्त जगजीत॥११
विषै प्रीति अनुरागता, अद्भुत ठगनी सोय।
ठगे चक्रवरत्यान[3] को, वचेकहांते कोय ॥ १२ ॥
दोष समान न दुष्ट धी, जगत विरोधी जान।
करे दौर[4] त्रैलोक में, दौरो खरो प्रवान ॥ १३ ॥

---

१ भयंकर २ जग की वस्तुओं से प्रेम,
३ चक्र वर्तियों ४ दौड़ करना

हरे शुद्धता भाव जो, हरे दया सौहार्द ।
महा निर्दयी दुरमति, धारे अतुलित गर्व ॥१४॥
क्रोध प्रिया दुरजन्यता, महा दुष्टता होय ।
ठगे जु असुरिन्द्रादि को,हरि[1]प्रतिहरि[2]को सोय ।।१५
काम नाग ठग अति प्रबल, तासम नाहि कुचील ।
करे फैल[3] बदफैल बहु, हरे जगत को शील ॥१६॥
कुँवर समान ज्यों मोह के, महा पाप को धाम ।
ठगे देव दैत्यान को, नर पशु सबको काम ॥ १७ ॥
काम प्रिया रति अति बुरी, भव भरमाव सोय ।
अनुपम ठगनी है भया[4], व्रत तप हरणी जोय ॥१८
कंटक कोइ न क्रोध सो, हरे प्राण तक कीक[5] ।
हरे बुद्धि सो धन महा, बोले बचन अलीक[6] ॥१९॥
उघडो हथ मा रौद्र है, महा मोह उमराव ।
करता हरता मोह कै, धारे कुबुद्धि कुभाव ॥ २० ॥

---

१ हराकर २ वसुदेव शत्रु ३ दुराचारी–दुष्ट कार्य
४ भाई ५ नीच ६ कूट

ठगे वासुदेवादि को, रुद्रादिक को सोय ।
ठगे सुरासुर वर्ग को, बचे कहां ते कोय ॥ २१ ॥
क्रोध प्रिया हिंसा महा, कलरूपिणी जोय ।
ठगं सवनि को सर्वदा, उबरे मुनिवर कोय । २२ ॥
नाहि कठोर गुमान सो, जड़ ज्यों रह्यो गिरि मान ।
गिने तुच्छ सबको सदा, खोसे गुन से प्राण ॥२३॥
हरे विनय धन सर्वथा, करे बहुत विपरीत ।
ताके बल नृप मोह खल, होय रह्यो जु अजीत ॥२४
अति सन्मान गुमान को, मोह राज दरबार ।
ठगे फणीन्द्र महेन्द्र को, यह जग अति बल धार ॥२५
मान प्रिया ठगनी बुरी, नाम अहंता[1] होय ।
अहंकार लीयां सदा, भयंकार अति सोय ॥ २६ ॥
ठगे जु अहमिंद्रादि को, ठगे मुनिन को येह ।
कोइक उबरे शान्तधी, धारे दशा विदेह ॥ २७ ॥
कपट समान न कुटिल को, सो नृप के परधान ।
अति बल बल पर पंचमय, पाखंडी परवान[2]॥२८॥

---

१ अभिमान २ निश्चत ।

ठगे सदा सबको सही, करे जगत को बाध[1] ।
कोईक[2] उबर साधना, करे जो निजाराध ॥२९
कपट प्रिया है कालिमा, कुटलाई को धाम ।
ठगे नारदादीन को, बचे मुनि निहकाम[3] ॥३०॥
नहीं लुटेरा लोभ सो, लूटे त्रिभुवन मोहि ।
सो सेनापति मोह के, अति कोटा भट होय ॥३१॥
सुरपति नरपति नागपति[4], खगपति[5] दलपति जेहि।
सर्व लटावे लोभतें, दंड लोभ को देहि ॥३२॥
लूटे सबको सर्वथा, लोभ सर्वदा वीर ।
कोयिक लूटे जाय नहि, संतोषी मुनिधीर ॥३३।
लोभ प्रिया तृष्णा महा, जगत द्रोहिणी सोय ।
सर्व भक्षिणी पापिणी, मुनि ठगिनी है सोय ॥३४॥
कोयिक मुनिवर उबरे[6], श्री जिनवर परताप ।
तजे भोग तृष्णा सबे, सेवे धर्म निपाप[7] ॥३५

---

१ बाधा २ कोई बच कर आत्म ध्यान की साधना कर सकता है ३ कामना रहित ४ शेषनाग ५ गरुड़ ६ उद्धार पा सकते हैं ७ पाप रहित होकर ।

निज प्रतीति हर भर्मकर, ठगन मिथ्यात्व समान ।
सो स्वरूप है मोह को, कुबुद्धि पाप निधान ॥३६।
प्रिया मिथ्यात्व मलीन की, महा अविद्या जान ।
ठगे थावरा[1] जंगमा, जग ठगनी परवान ॥ ३७ ॥
नहीं सोच सो कष्ट कर, सुख हर दे संताप ।
सोच प्रिया चिंता अरति, उपजावे बहु ताप ॥३८।
भैकारी[2] है भय महा, मारे चहुंगति माहि ।
व्याकुलता है भय प्रिया, जामें आनन्द नाहि ॥३९॥
रोग महाबल तन हरण, मरण करण दुखदाय ।
आदि व्याधि रोग प्रिया, कबहु नहि सुखदाय ॥४०
शोक हरे आनन्द को, करे सबन[3] को दीन ।
सोक प्रिया संतप्तता[4], करे जगत को छीन ॥४१॥
अव्रत और असंजमा, विकथा वाद विवाद ।
मोह राव के रावता[5], हरष विषाद प्रमाद ॥४२॥

---

१ स्थावर २ भयकारी—व्याकुल करने वाला
३ सब को ४ चिंता मुक्त रहना ५ सामन्त ।.

सब ठग सब फांसो गरा, सर्व लुटेरा नीच।
सब दौरा सब चोर ये, भरे कालिमा कीच[१]। ४३
ये सब ही जु पिशाच हैं, भूत राक्षसा येह।
दैत्य दानवा दुरमति, ये ही असुर गनेय[२] ॥ ४४ ॥
ये अजगर अष्टापदा[३], मत्त मतंगज[४] सिंह।
सर्प यहि व्याघ्र सदा जीते मुनि नरसिंह ॥४५॥
ये भिडियात्र[५] अनादिका, ये भेरू ड वितु ड[६]।
दुष्ट ये ही चीता महा, ये ही मगर प्रचण्ड ॥४६॥
ये दावानल दुख मयी, ये दुख सागर जान।
इनसे दुर्जन और नहि यह निश्चय उरआन[७] ॥४७॥
शत्रु येहि मोहादिका, ये किरात दुखदाय।
यहि पारधी[८] धीवरा, यहि अहेरी राय ॥ ४८ ॥
एवागुर अति दोष भर, महा पाप के रूप।
हिंसक निर्दय दुरजना, ठगपुर मांहि विरूप ॥४९॥

---

१ कीचड़–संसारी पाप २ गिनो ३ आठ पांव वाले
४ हाथी ५ भेड़िया ६ हाथी ७ जी में विचार
८ शिकारी–अहेरी।

नाहिं ठगोरी लोक में, विषय वासना तुल्य ।
महा ईरषा[1] आदि बहु, विषकर पूरण कुल्य ॥५०॥
भोग भावना सारखी, भुरकी[2] जग सिर डारि ।
खोसि लेहि सब ज्ञान धन, डारै नरक मंझारि ॥५१
बात बनाय धीजायते[3], विषय ठगोरि डारि ।
लेहैं ज्ञान छिनाय धन, तातैं न तन विचार ॥५२॥
जतन न कोई दूसरो, करो निजपुरी[4] वास ।
विलसो निज धन सासतो[5],धारो अतुल विलास॥५३
कैसे पहुंचो निजपुरी, लषि ठगनि को ग्राम ।
सो उपाय सुनि चित्त धरि, करहु आतमाराम ॥५४
मोह विदारक सम्यका[6], राग विडार विराग ।
शान्त भाव है दोषहर, धारे जाहि सभाग[7] ॥५५॥
काम विडार[8] विवक है, मार्दव मान निवार ।
मार्दव कहिये मैंणसो[9] नर्म भाव अविकार ॥५६

---

१ ईर्ष्या २ भभूत या ऐसा चूर्ण जिसको किसी पर डालकर ठग बच्चों को भुलावे मे डालते हैं ३ विश्वास पैदा कर देती है ४ आत्मा ५ शाश्वत ६ सम्यग्दर्शन ७ भाग्यवान ८ नाशक ९ मोम ।

क्रोध निवारक है क्षमा, आर्जव कपट निवार ।
आर्जव कहिये विमलता, महा सरलता सार ॥५७॥
लोभ विडारक लोक में, नहि संतोष समान ।
पाप विडार न तप जिसो, कोय न दूजो आन[1]॥५८
मोहादिक दोषीन के, हरण हार सुखदाय ।
है अनेक जोधा महा, कोलग[2] कहूं बनाय ॥ ५९ ॥
तिनको लारे लेय तूं, बांधि ठगन को ग्राम ।
निजपुर माँहि वसो महां, जहां न ठग को काम ॥६०
ठग ग्राम को वर्णना, पढ़े सुने जो कोय ।
ठग ग्राम को बांधि के, निजपुर वासी होय ॥ ६१ ॥
निज दौलत[3] विलसे महा, रमे सदा निज माहिं ।
जामण मरण करें नहीं, ममता मोह नशाय ॥६२॥

॥ इति ठग ग्राम वर्णनम् ॥

दोहा

निजवन में क्रीडा करे, क्रीडा सिंधु कृपाल ।
ताहि नमूं कर जोर के, जाहि न व्यापे काल ॥ १॥

---

१ अन्य २ कहां तक ३ आत्म गुण ।

धन नहि निज धन सार खो, है अमरण धन यह ।
अमरोद्यान[1] कहै जिसे, परमानन्द अछेह[2] ॥ २ ॥
सही अभय वन ये सही, सदा अभय पुरपास ।
अति रमणीक मनोहरा, सुख अनंत की रास ॥३॥
यह केली[3] वन हंस को, हिंसा रहित अनूप ।
रमे शान्त रसधार का, परम हंस चिद्रूप[4] ॥४॥
नहि कोयल संसार में, आतम कला समान ।
हुलसिया आतम केलिके, निजवन बसिया मान ॥५॥
ज्ञान अभय वन मार्गी, ज्ञानी जीव विहंग[5] ।
तेहि रमे निज वन विषे, क्रीडा करें अभंग[6] ॥६॥
नहिं सरवर सम भाव से, निजरस पूरित जेह ।
कमल न भाव अलेप[7] से सदा प्रफुल्लित तेह ॥७॥
भमर न भाव रस जसे[8], भ्रमे तिनोपरि[9] भूरि ।
यही रंग वन है भया, सब कुरंग ते दूर ॥ ८ ॥

---

१ नन्दन वन २ जिसका छोर न हो—अपार ३ क्रीड़ा उपवन ४ ज्ञानमय आत्मा ५ पक्षी ६ अखंड निरंतर ७ (संसार से) अलिप्त सा ८ जैसा ९ उस पर ।

मृग नहि चपल स्वभाव से, ते यामे नहिं कोय।
दुष्ट भाव मय दुष्ट पशु,तिन को नाम न होय ॥९॥
मोह दैत्य को वास नहिं, नाहिं किरात कषाय।
असुर दुराचार न जहां, लोभ चोर न रहाय ॥१०॥
नहि दम्भ छल छिद्र ठग, नहीं धूर्त पाखंड।
न पर द्रोह दौरा करे, दौर करें परचन्ड ॥११॥
पाप रूप परपंच नहीं, इन्द्री भृत न कोय।
मदन पिशाच रहे नहीं, अद्भुत वन है सोय ॥१२॥
नहीं एक कंटक जहां, जहां न विकलप जाल।
विष वेलिन माया मई, सो वन महा विशाल ॥१३
नहि दुषफल नहिं दोष दल, नाहि विषै विष फूल।
सो वन सेय सुजान तू, जो सब सुख को मूल ॥१४
विष वृक्ष न अघ[1] कर्म मयी, नाहिं कुपक्ष कदाच[2]।
जहां कुजीवहु एक नहिं रहे ज्ञान घन राच ॥१५॥
रागादिक रजनीचरा[3], विचरं तहां न कोय।
सदा प्रफुल्लित भाव मय,अति सुख फल दे सोय॥१६

१ पाप २ कदाचित ३ राक्षस।

भाव भवातप हरण से, और पद्म नहिं होय।
तिनकर शोभित तरलता, अद्भुत वन है जोय ॥१७
निर्मलता सी वापिका, अर निज रस से कूप।
निज वन तिन कर सोहई, अमृत मयी अनूप ॥१८
उच्च भाव थिर भाव से, क्रीडा गिरि नहिं जान।
तैं या वन मे सुन्दरा, यह सरधा उर आन ॥१९॥
दाह-हरण शिव-करण जे, भाव परम रस रूप।
तैसे द्रह[1] नहिं लोक मे, निजवन माहि अनूप ॥२०
केवल कला कलोलिनी[2], जामें परम कलोल।
ता सम नाहिं कलोलनी निजवन माहिं अडोल ॥२१
या सम नन्दन वन नहीं, वन्दन जोग विसाल।
यह तीरथ निजधाम है, हरे सकल जंजाल ॥२२॥
रमें सदा या वन विषैं, तेहि लहे आनन्द।
या सम रमवा जोग नहि, यह अति रस को कंद॥२३
ज्ञान संपदा सास्वती[3], सो निज दौलत जान।
निज संपति बिलस्यां बिना, वन केलि न परवान॥२४

१ बडे जलाशय २ नदी ३ शाश्वत-स्थिर

यह निज वन वर्णन सुधा[1], पढ़े सुने जो कोय।
निज कानन क्रीडा करन, कर्म हरण सो होय ॥२९॥

भव-वन निरूपणम्

भव वन सो वन नाहि को, गहन विषम अघ रूप।
जहां न रंचहु रम्यता, दीसे महा विरूप ॥ १ ॥
भव वन भ्रमण निवार के, देय अभय पुरवास।
वन्दों देव दयाल को, करें आप सम दास ॥ २ ॥
भयकारी भ्रम तम भरयो, है हिंसा को धाम।
असुर न हिंसक भाव से, बसें बहुत तिह ठाम ॥३॥
दैत्य न दुष्ट स्वभाव से, ते विचरें घनघोर।
चोर न चाहि[2] स्वभाव से, है तिन को अति जोर ॥४
दैत्य शिरोमणि निर्दयी, महा मोह छलवान।
ता सम कोई न दुर्जना, सो वनपति बलवान ॥५॥
दुराचार सो दूसरो, अशुभ अवर नहि कोय।
सो जुग राज महीप के, कहां भलाई होय ॥६॥

---

१ बुद्धिमान २ इच्छा—तृष्णा

रागद्वेष रज-नोचरा, तिसे न राक्षस और ।
तेहि मोह नरपति नवें[1] सुभटन के सिर मौर ॥७॥
पाप समान पिशाच नहिं, सो नृप के परधान ।
सप्त व्यसन सैन्यापति, है सैनापति अज्ञान ॥८॥
नहिं अपराध बराबरी, महा पारधी[2] कोय ।
सो प्रोहित[3] भूपाल के, दया कहां ते होय ॥९॥
परे जगत के जीव सहु, मोह पाँस के मांहि ।
पंथ नगर निर्वाण को, नृप चलवा दे नाहिं ॥१०॥
कर स्थान भव वन विषें, बैठो मोह भूपाल ।
काल समों विकराल नहि, सो नृप के कुतवाल ॥११
करे राज कानन विषें, कुबुद्धि कुटिल कुरूप ।
मोह राव को राज सब, लखिये पाप स्वरूप ॥१२॥
ममता पटरानी महा, मोह भूप के जान ।
धरे ममत्व स्वभाव सो, कुबुद्धि मूल परवान ॥१३
पाप प्रवृत्ति समान को और नहिं अन्याय ।
वर्ते तहां अन्याय ही, मोह राव पर-भाव ॥१४॥

---

१ पास २ शिकारी-अहेरी ३ पुरोहित

विष वृक्षन वसु-कर्म से, जे अति कंटक रूप।
मर्णा देहि भव भव विषैं, छाया रहित विरूप ॥१५
तिन कर पूरण भव बना मन मर्कट[1] की केलि।
फैल रही माया तहां, तिसी न विष की बेल ॥१६॥
शुद्धातम अनुभूति सी, अमृत लता न कोय।
महा अगोचर है जहां, मरण हरण है सोय ॥१७॥
सदा सघन अति मगन जे, भाव शुद्ध उपयोग।
तिन से अमृत तरू नहि तिनको दुल्लभ[2] जोग ॥१८
नाहिं कुपत्र कुसूत्र से, तिन ही को विस्तार।
नाहिं सुपुत्र सुसूत्र से, तिन को तुच्छ विचार ॥१९
मान फूल धन फूल जो, राज फूल मन फूल।
विषय फूल से विष पहुप[3], और न जानो मूल ॥२०
फूल रहे तेहि तहां, दुख फल फले अनंत।
दुख फल से नहीं विषफला, यह भाखें भगवंत॥२१
सदा प्रफुल्लित सहज हि, जे केवल निज भाव।
तैसे फूल न सुख मई, तिनको अलप लखाव ॥२२

---

१ बन्दर २ दुर्लभ ३ पुष्प

परम भाव अति रस मई, तिसे सुधा फल नाहिं।
ते अगम्य[1] भव वन विषै, जिनकर सब दुख जाहिं॥२३
शांत भाव सो मिष्ट जल, अमृत रूप न कोय।
सो भव में मिलवो कठिन, जाकर तिरपत[2] होय॥२४
विषय वासना सारषो, और न विष जल वीर।
सो भववन में बहुत हैं खार मलिन जो नीर॥२५॥
भर्यो कपट मय कीचसों, जाकर तृषा न जाय।
सो पीवे वन जन सबे मरे रोग दुख पाय॥२६॥
मृग तृष्णा नहिं भ्रांति सी, सो अत्यन्त लखाय।
यह वन मृग तृष्णा मई, सब जन सदा भ्रमाय॥२७
वांसनि मे मोती दुर्लभ, त्यों भववन में साध[3]।
कोइक[4] पइये धर्मधी[5], केवल तत्व अराध॥२८॥
गिरि न कठोर स्वभाव से, तिनकी भली न दौर।
ते भववन में मुख्य है, महा कष्ठ की ठौर॥ २९ ॥
तनान[6] नीच प्रवृत्ति से, रह्यो तिनो ते पूरि।
स्यात न कायर भाव से, ते या वन मे भूरि॥३०॥

१ पहुंच से बाहर २ तृप्त-सतुष्ट ३ साधना-तत्व-आराधन ४ कोई ५ धर्मात्मा ६ पेड़ का निचला भाग

मृग नहिं मूरख जीव से, फंसे फांस के मांहि।
कर अनुराग जु राग सों, वृथा जीव सों जाय ॥३१॥
अहंकार ममकार[1] से, नांहि अहेरी कोय।
भयंकार विचरे सदा, अंतक सम है सोय ॥३२॥
जाल न विकलप जाल से, इह वन जाल स्वरूप।
अति जंजाल भरयों सदा, महा भंखविडरूप[2] ॥३३
जीवन के कुल जाति जे, अर नाना विधि वंस।
तिन सेवा सन[3] और को, नहीं कुभाव से कंस ॥३४
भरयो वंस अर कंस से, अंस मात्र[4] सुख नांहि।
लुटै पंथ निरवान को, बहु पंथी विनसांहि[5] ॥३५॥
सम्यक दर्शन सोय कथा, ता विनु पर की आस।
घास सोय तासों भरयो, भव वन कष्ट निवास॥३६
नहिं कंटक क्रोधादि से, तिनकर पूरण यह।
क्रूर भाव से सिंह नहिं, भव वन तिन को गेह ॥३७

---

१ ममता-यह मेरा यह मेरा-ऐसा भाव २ अत्यन्त भयंकर ३ सेवा के समान ४ तनिक ५ नष्ट हो जाते हैं।

दुर्नय वादी जीव से, नांहि कुपक्षी कोय ।
या संसार असार में, करै सोर अति सोय ॥ ३८॥
नहिं अजगर अज्ञान सो, ग्रसे जगत को जोय ।
बसै सही भव वन विषे, बचे कहाँ ते कोय ॥ ३९॥
मद अष्टन से और को, अष्टापद[1] नहिं वीर ।
भव अटवी में ते रहे, तिने नहीं पर पीर ॥४०॥
अति उन्माद प्रमाद सो, मत्तगयंद[2] न और ।
सो वन गज भव वन विषै, दुष्टनि को सिर मौर ॥४१
रहै सदा उनमत महा, काल स्वरूप विरूप ।
थिर चर से नहि वन चरा, बसै तहां भय रूप ॥४२॥
पीहै पाप पिशाच अति दुष्टनि को सरदार ।
भूत न इन्द्री पंच सी, तिन को तहां विहार ॥४३॥
छल छिद्रन से और को, नाहिं छलावा होय ।
फिरैं छलावा वन विषै, बचे कहां ते कोय ॥४४॥
भव कांतार[3] असार है, अति दुष्टनि को वास ।
नहिं उलूक[4] मिथ्यात्व सो, ताको तहां विलास ॥४५

१ सिंह २ मस्त हाथी ३ जंगल ४ उल्लू पक्षी

काम लोभ परपंच से, ठग नहिं कोई और ।
सदा ठगे भव वन विषे, करे जगत को चोर ॥४६॥
बटपारो[1] दौरो बुरो, नहि पर द्रोह समान।
दौर करे पर धन हरे, धरे बहुत अभिमान ॥४७॥
नहिं अन्धेर स्वभाव से, सूमा और है वीर ।
सिथिल मंद मति भाव मे, गेंडा आन न धीर ॥४८
भय दायक भावान से, और नहि भिडियाव[2] ।
भव अरण्य भीतर भया, तिन को सदा लखाव॥४६
बाधा कारी भाव मे, नाहि बघेरा कोय ।
हठ ग्राहक भावान मे, सूकर और न होय ॥५०॥
अविवेकी भावान से, महिष[3] अरण्य न और।
इत्यादिक खल जीव गण, दीसे ठौर जु ठौर ॥५१॥
लोक गवांर अजान जे, तिसे न सांभर रोम।
सदा रहे भ्रम भाव मे, धरे न तप व्रत बोझ ॥५२
इत उत डोलत ही फिरे, अति ही झकोला खाय ।
चित्त वृत्ति चंचल रूप जो, निश्चल कबहु न थाय॥५३

---

१ डाकू २ भेडिया ३ भैंसे

ता सम औ न लोंगती[1], भवकांतार मझार ।
विचरे भ्रांति भरी सदा, धरे न थिरता सार ॥२४॥
उड़े फिरे चंचल महा, जे जग के परिणाम ।
तिसे न भेरूड़ा गरुड़, तिनको भव वन धाम ॥२५॥
परम हंस मुनिराज से हंस और नहिं कोय ।
तिनको भव कानन विषै, दर्शन दुर्लभ होय ॥ २६॥
नहिं सरवर सुख-सर समो, समरस पूरित नीर ।
ताके भेदी भव्य जन, विरला जानो वीर ॥ २७ ॥
नहीं वाय जग वाय सी, जगत उडावा जोय ।
बाजे अति अमराल[2] सो, कंपे थिर चर लोय ॥२८॥
काय दापरी वापरी, यापे टिके न कोय ।
निज पद परवत आसरो, पकरे उबरे सोय ॥२९
नहि कोपानल[3] सारखो, दावानल[4] विकराल ।
सर्व चराचर भस्म कर, महा ताप मय ज्वाल ॥६०॥

---

१ जोमड़ी २ बहुत ३ क्रोध की अग्नि ४ जंगल में बांसों की रगड़ से लगने वाली आग ।

लाग रही भव वन विषै, तापै बचवो नाहि ।
बुझै शांत रस नीर से, सो दुर्लभ भव मांहि ॥६१॥
निज गुण अंबुधि में बसे; ताहि न याको ताप ।
ताते सकल विलाप तज, सेवो आपनि आप ॥६२॥
विषय पंच इन्द्रीन के, काल कूट विष तेहि ।
विष को मूल भयंकरा, भव कानन है येहि ॥६३॥
नहीं लुटेरा काल सो लूटे सरवसु[1] जोहि ।
संक[2] न माने कोई की, हरे प्राण धन सोहि॥६४
रागादिक रजनीचरा, विचरें अहनिश[3] वीर ।
रोके पंचम गति पथा, करे जगत को पीर ॥६५।
दैत्य शिरोमणि मोह को, राज महा विपरीत ।
छोटे को मोटो गिले, वसे लोक भयभीत ॥६६॥
पर वंचक पाखंड से और दूसरे नाहि ।
तिनको तहं अधिकार है, मोहराज के मांहि ॥६७॥
राज करे पापी जहां, दैत्यन को सिरदार ।
कैसे चाले धर्म को, मारग तहां जु सार ॥६८॥

१ सब २ डर ३ दिन रात

दर्शन ज्ञान चारित्र मे, और न निजपुर पंथ।
या मारग वह तत्व को, पावै मुनि निग्रन्थ ॥६९।
मोक्ष मार्गी मुनि जिसे, और न जानों कोय।
मोह मान हर ज्ञान धर, निजपुर पहुंचे सोय ॥७०॥
संयम तप वैराग व्रत, निवृति विषय कषाय।
संवर निर्जर सुभट ये, भय हारी सुखदाय ॥७१
इनसे वोलावा नहीं, भव भय गने न मूल।
पहुँचावें निर्वाण ये, कबहु न ह्वै प्रतिकूल ॥७२
क्षायिक सम्यक केवला, भावी रज अरुनंत।
वर द्रग बोध अनंत सुख, ह्वै तन भाव कहंत ॥७३
शुद्ध पारणामीक ये, साथी प्रबल प्रचंड।
इनसे साथी और नहि, धारे साथ अखंड ॥७४॥
नहि सिरा[1] जिनवानि सो, दर्शक[2] गुरु से नाहिं।
नगर नहीं निरवाण सो, जहां सत ही जाय ॥७५
भव कांतार वहे तरी, पढ़े सुने जो कोय।
सो भव कानन लंघि के, निजपुर नायक होय ॥७६॥

---

१ साथी २ पथ प्रदर्शक

लहै सासती दौलती, फेर जु भव वन माँहि।
उपजै मर्ण करे नहि, निजपुर माँहि रहाहि ॥७७॥

आत्म-सागर वर्णनम्

चिदानंद चिन—मूर्ति, चेतन राय नरेश।
रमै सदा सुख सिधु मे नमे जाहि जोगेस[1] ॥ १ ॥
ताहि प्रणमि तिन मुनि महा, प्रणमि सार सिद्धांत।
निज समुद्र वरणन करूँ जा सम और न शांत ॥२॥
चेतन सागर सारिखो, और न सागर खीर।
यह अमृत सागर महा, हरे दाह दुःख पीर ॥३॥
विमल भाव सो जगत मे, होय न निर्मल नीर।
भरयो विमल जल भाव सो, गुण सागर गंभोर ॥४॥
लहरिन[2] परमानन्द सी, जामें लहर अनंत।
नदी न निज परिणति जिसी, यह भाषे भगवंत ॥५
बहे अखंडित धार जे निज परिणति रसधार।
ते सब निज सागर विषै, मिले महा अविकार ॥६॥

---

१ योगीश्वर-मुनि आदि २ लहरें

रतन न दर्शन ज्ञान से, है रत्नाकर[1] येह।
भर्‌यो भाव रत्नानि तैं, अंबुधि अचल अछेह[2] ॥७
मुक्त सकल परपच तैं, जे आतम परिणाम।
ते मुक्ताफल[3] निमला, सागर तिन को धाम ॥८॥
उज्ज्वल उत्तम भाव से, परम हंस नहिं कोय।
यह हंसन को सागरा, अद्‌भुत अंबुधि होय ।९॥
अस्ति मदा सत्ता धरैं, वस्तु रूप अतिसार।
चेतनता आनन्दता, ये निज भाव अपार ॥१०॥
भाव मई सागर यहे, भाव समुद्र कहाय।
सुख सागर रस सागरा, नाम अनंत धराय ।।११॥
सुख नहि विषयादिक विषै[4], सुख आतम रससार।
मन इन्द्री वर्जित महा, अविनाशी अविकार ॥१२।
सुख समुद्र है सासतो, निजगुण रूप सरूप।
लौकिक गुण ते रहित जो, गुण सागर सद्रूप[5]॥१३

---

१ रत्नों का खजाना–समुद्र–अंबुधि २ अति गहरा
३ मोती ४ मे ५ सत्-रूप, आत्म रूप ।

नाहि मगन भावान से, वन उपवन जग माहि।
ये सब याके तीर हैं, यामें संशय नाहि ॥ १४ ॥
अमृत वेलि न लोक में, निज अनुभूति समान ।
सोई फल रहा जलधि तट, अवर न फल रसवान॥१५
जड़ स्वभाव जलचर नही, जेतन सागर माहि।
मोह मान मन मदन[1] छल, मगर न एक रहाहि ॥१६
मृत्यु कारण दुष्ट ते, इनमें दुष्ट न और।
रस सागर रत्नागरा, नहीं तिन्हो की ठौर ॥१७॥
धरें पक्ष मिथ्यात्व की, दया भाव तें दूर ।
ते ही कुपचा नहिं तहां, सागर है सुख पूर ॥१८॥
जीव लोलुपा[2] माछला, निठर काछवा जांह ।
वृथा विवादी[3] मीढका, सागर मे नहि तेहि ॥१९॥
तुच्छ भाव जे झींगरा, कीट कालिमा रूप।
जल सर्पा जग भाव जे, सागर में न विरूप ॥२०॥

---

१ काम २ छोटे जलचरों को खाने वाले ३ टर टर करने वाले

अग जंजाल अनेक जे, ते जल देवत जान।
तिन को तहां न ठाम है, यह निश्चय परवान ।।२१
मलिन भाव ही काग जल, जल निधि मे नहिं कोय।
मद मच्छर माछर नहीं, अद्भुत सागर सोय ।।२२।।
पर पीड़ा कर क्षुद्र जे परिणामा जग माहि।
नहि डांसरा दुष्टधी[1] रस सागर मे नाहिं।२३।।
विषय वासना मारखी, नही कुवासना कोय।
निज सागर में सो नहीं, सुख सागर है सोय ।।२४
विष तरु राग विरोध से, माया सी विष वेलि।
नहि अमृत सागर नखे[2], सागर रस की रेल ।।२५
कृपण भाव कोंडी[3] नही, नाहि मिथ्याति संख।
दुविधा सीप नही जहां, निज सागर नहि भंख ।२६
विषम पवन जग वायसी, और न कोई असार।
सो वाजे नहिं जलधि मे, उदधि अथाह अपार।२७
वडवानल वांछा जिसी, नहिं विश्व के मांहि।
सो नहि विमल पयोधि मे खल नहि कोई रहाहि।२८

---

१ दुष्टात्मा २ पास ३ कौडी

कल हंसन निज केलि से, जिनको सदा निवास।
नहिं सारिस समभाव से, तिन को सदा विलास। २६
राज हंस रिषी राय से और न जानो वीर।
क्रीडा करै सदा तहां, जहां सहज रसनीर ॥ ३० ।
अवर[1] विहंग मार्गी, होहि स्वभाव विहंग।
तेहि सुपची जलधि में, लीला करै अभंग ॥३१
हिंसा भाव नही जहां, है हंसनि की केलि।
शीत न ताप न रैन दिन, जल निधि रस की रेलि। ३२
खार भाव से खार जल, जलधि थकी अति दूर।
सो रत्नागर सागरा, गुण अनन्त भरपूर ॥ ३३ ॥
नाहि विभाव व्यंतर जहां अशुभ असुर नहिं कोय।
माया चार न चोर छल, अनुपम सागर सोय। ३४
पापाचार स्वरूप खल[2], परिणामा सिंहादि।
सागर तीर न पाइये मद परिणाम गजादि। ३५।
कायर चंचल भाव मय, एक न कोई मृगादि ॥
सागर तीर न देखिये, दोष रूप दैत्यादि ॥३६॥

---

१ दूसरे २ दुष्ट

लोभ लुटेरा नहिं जहां, लूट सकै नहि कोय ।
दुख दायिक दुरभाव नहिं, सुख सागर है सोय ॥३७
क्रीडाभाव-स्वभाव ही, क्रीड़ा भाव अनूप ।
क्रीडा करै पयोधि में, परमातम निज रूप ॥३८॥
नाम अनन्त पयोधि के, महिमा अगम अपार ।
भाव नगर के निकट ही, भाव उदधि अविकार[1] ॥३९
आतम भावहि नगर है आतम भाव पयोधि ।
आतम रामहि राव है, यह निज घट मे सोधि ॥४०
और न भाव प्रचंड कछु, केवल चेतन भाव ।
यह निज सागर वर्णना, उरधारैं मुनिराव ॥ ४१ ॥

भाव समुद्र वर्णनम्

या संसार असार में, श्री भगवान अधार ।
तेहि उधारैं गुणनिधि, करैं भवोदधि पार ॥१॥
नहि संसार समुद्र सो, सागर और विरूप ।
यह विष सागर दुख मई, महा भयंकर रूप ॥ २ ॥

---

१ विकृति शून्य, जन्म मरणादि विकार शून्य ।

भोग कामना कल्पना, भर्म वासना तेह ।
अति कुवासना सो भर्यो, भवसागर है यह ॥ ३ ॥
दुख सागर सद्रूप यह, है अत्यन्त असार ।
खार महा विष जल मई, है भव-पारावार[1] ॥४॥
विषय सारखो जग विषे, और न है विष नीर ।
भव भव उपजावे मरण, देय सदा दुख पीर ॥५॥
भाव कालिमा सारखो, कीच न जग में कोय ।
कीच कालिमा सों भर्यो, भव सागर है सोय ॥६॥
मल नहिं मोह ममत्व सो, यह मल सागर पूर ।
छल सागर छल सों भर्यो, खल सागर सुख दूर॥७
भोग भावना अति तृषा, उपजावे संताप ।
विषय नीर सो नहिं बुझै, विरथा[2] विषै विलाप[3]॥८
आतम अनुभव सारिखो, और सुधारस नाहिं ।
सो अति दुलभ है भया[4], भव सागर के मांहि ॥९

---

१ संसार-समुद्र २ व्यर्थ ३ विषयों के लिये आतुरता
४ भैय्या-भाई ।

लहर न लोभ तरंग सी, ते भव माहिं अनन्त।
विषै तरंगनि सों भर्यो, दुख दोषन को कंत ॥१०॥
नदी न आसा आदि सी, आकुलता जल पूर।
मिले सकल भव सिंधु मे, रहे जीव अति कूर ॥११॥
भवण[1] न भ्रम सो और को, उठे भवन भ्रम रूप।
भव समुद्र विडरूप अति, कहैं महामुनि भूप ॥१२
याके तट तर-वर विषा, विषम भाव अघरूप।
तिसे कुवृक्ष न और को, कंटक रूप कुरूप ॥ १३ ॥
बाधा सी विष वेलि नहिं, विकलप से नहि जाल।
ते भव सागर के नखें[2], दीखें अति विकराल ॥१४॥
विन उपवन दुख फल भरे, भव सागर के तीर।
माया ममता मूरछा, वन देवी है वीर ॥ १५ ॥
अमृत तरु सम भाव जे, ते सागर तट नाहि।
अमरण फल को नाम नहिं, मरण सदा भवमाहि।१६
अमृत वेलि न विश्व में, निज अनुभूति समान।
सो भवसागर सों सदा, है अति दूर निधान ॥१७

---

१ भ्रमर २ पास।

संशय विभ्रम मोह भय, धारे असुर अपार ।
अति अथाह गंभीर है, पै कट फैन असार ॥ १८ ॥
आदि अन्त न मध्य है, भव सागर को वीर ।
कोइक उधरें धीर नर, तिरैं भवोदधि नीर ॥१९॥
मीन न लंपट चपल से, तिनको अति विस्तार ।
मीनध्वज[1] से धीवर न, पाप स्वरूप अपार ॥२०॥
धार्या विकलप जाल जे, भाव महा विकराल ।
पकरैं चल[2] मन मीन को, करैं बहुत बेहाल ॥२१॥
नहि दादुर[3] दुर्बुद्धि से, बकवादी चल भाव ।
तिनको तहां निवास है, यह भाखे मुनि राव ॥२२॥
निष्ठुर भाव कठोर जे, तेहि काछिवा जान ।
भर्यो जलचरादिक थकी, जलनिधि दुखनिधि मान२३
अति आलस परमाद से, सूंसि और नहिं कोय ।
कर्म-बंध पर बंध से, नहिं तांतूणि जु होय ॥२४॥
मगर मच्छ नहिं काल सो, गिलै जगत को जोय ।
भव सागर मे सो रहे, बचै कहां ते कोय ॥ २५ ॥

---

१ कामदेव २ चञ्चल ३ मेंढक

महा नून वृत्ति तुच्छ वृत्ति, हीन दीन भव भाव।
तेहि झींगरा जानिये, तिनको बहुत लखाव ॥२६
कीट न विषय कषाय से, महा मलिन दुखदाय।
काई कर्म कलंक सम, और न कोई कहाय ॥२७॥
कूड कलंक कलेश मय, भवसागर भय-सिंधु।
कोयिक उधरें साधवा, रहत सकल पर बंध ॥२८॥
मांछर मच्छर भाव जे, डांसर दुसह स्वभाव।
सागर तीर अपार हैं, यह दुख को दरियाव[२]॥२९॥
थलचर जलचर नभ चरा, थिर थिर जग के जीव।
भरयो सदा सब भूत[३] तें, जामें बहुत कुजीव ॥३०
जामण मरण करै सदा, दुख देख मति हीन।
कोइक मुनिवर पार ह्वै, निज आतम लवलीन ॥३१
त्रिविध ताप संताप तुल[४] बडवानल नहिं कोय।
सोई भवानल भव विषे, सदा प्रज्वलित होय ॥३२॥
जैसे जल को सोसही, बड़वानल जल मांहि।
तैसे यह जीवन जला, सोसे संशय नाहि ॥३३॥

---

१ निगल जाने २ समुद्र ३ प्राणी ४ समान।

यह नाहिं रत्नाकरा, दोषा-कर दुष्ट रूप।
खानि महा मच्छानि की, मकराकर[1] विरूप ॥३४
दुर्नय पक्षी सारखे, नाहिं कुपक्षी कोय।
करें तेहि अति कुशब्दा, सदा सार अति होय ॥३५
रहित ज्ञान धन जड़ रता, जे मिथ्या परिणाम।
तिन से संख न और को, भव जल तिन को धाम॥३६
संखोघ्यो[2] सागर यहै, महा संख अति भंख[3]।
उतरें पार पुनीत नर, जे निशंक निहकंख[4] ॥ ३७॥
कृपण वृत्ति सम लोक में, कोंडी और न कोय।
भरयो भवोदधि तिन थकी, नहीं रम्य है सोय ॥३८
कोड्यो[5] सागर है सही, नहीं कोडी को यह।
गुण मणिक के पारखी, तजे या थकी नेह ॥३९॥
सीप न द्विविधा वृत्ति सी, है द्विविधा की खान।
सीपोघ्यों[6] सागर यहै, रमिवा जोगि न जान ॥४०॥

---

१ समुद्र २ शंखों से भरा हुआ ३ भयंकर ४ कांक्षा रहित ५ कौड़ियों से भरा हुआ ६ सीपों से भरा हुआ

कागन कोइ कुभाव मे, है तिनकी ह्यां केलि।
बुग[1] नहि ठग भावान से, तिन की रेल जु पेलि[2] ॥४१
जड स्वभाव जडता मई, बरजित सम्यक ज्ञान।
नहि तिन से जल देवता, रोके पथ निर्वाण ॥४२॥
रागादिक अति राक्षसा, दुष्ट भाव दैत्यादि।
पाप स्वरूप पिशाच बहु, व्यंतर हैं विषयादि ॥४३
ते संसार समुद्र मे, बसे सदा विकराल।
कैसे प्रोहण[3] चल सके, वहे वाय असराल[4] ॥४४।
वाय न मिथ्या वाय सी, जाकर जग उड जाय।
गिरि नहि थिरता भाव से, जे निश्चल ठहराय ॥ ४५
नाहि कुपवत लोक मे, कठिन भाव से कोय।
करकस[5] कटुक कषाय धर, निष्ठुर निरघृणा[6] होय।४६
ते भव सागर के विषे, नाव विदारक वीर।
अवर हु विघन बहोत है, यह सागर गम्भीर ॥४७॥

---

१ बगुला २ भरमार ३ सवारी-राहगीर ४ अति तीव्र
५ कठोर-कर्कश ६ घृणास्पद।

प्रोहण लूटे जल विषें, सबको सर्वस्व लेय ।
जल दौरा लालच महा, जग को बन्द करेय ।।४८।
तसकर[1] तृष्णा भाव जे, चोरैं अहिनिशि माल ।
माल न ज्ञान विराग सो, हरे जगत जंजाल ॥४६।।
अभच भक्षका हिंसका, तेहि सिह व्याघ्रादि ।
अति दोषी विषका भरया, तेहि जान सर्पादि ।।५०
सदा भवोदधि के तटे, मद परिणाम गजादि ।
विचरे कायर चंचला, भाव सुसा मृग आदि ।।५१
बाधक भाव कुभाव जे, तेहि व्याध अति होय ।
अपराधी परणाम जे, तेहि पारधी जोय ।। ५२ ।।
मूल महा दुख को सदा, भव समुद्र भयरूप ।
जामें रंच न रम्यता दीसे बहुत विरूप ।। ५३ ।।
है अच्छेह अघ[2] गेह यह, लंघे याहि अनेह[3] ।
तजे गेह देहादि सो, मोह मुनीन्द्र विदेह ।।५४।।
रतन न निजगुण रतन से, दर्शन ज्ञान स्वरूप ।
सत्ता चेतनता महा, आनन्दादि अनूप ।। ५५ ।।

---

१ चोर २ पाप ३ संसार मे ममता हीन

ते अगम्य अति दुर्लभा, जिनकर शोर नमाय।
शोरन रस अनरस समा, यह निश्चय ठहराय ॥५६॥
नहिं रतन की बात ह्यां, कौंडिन को व्योपार।
संख सीप बहुली सदा, संखन को सरदार ॥५७॥
निज मणि प्रापति अति कठिन, कोयिक पावे धीर।
सो न रहे भव सिंधु में, तजे तुरत भव नीर ॥५८॥
विमल भाव परकाश मय निर्मल ज्योति स्वरूप।
ते मुक्ताफल जानिये, वस्तु अनूप अनूप ॥५९॥
तिनको दर्शन दुर्लभा, भव सागर के माहि।
उज्वल उत्तम भाव जे, हंस न यहां रमाहिं ॥६०॥
नाव न मुनिवत सारखी, विरकत[1] भाव निधान।
मंडित मूलोत्तर गुणनि, पहुंचावे निर्वाण ॥६१॥
नाम नाव ही को महा, भाखे लोक-जिहाज[2]।
जति व्रत रूप जहाज में, राजें श्री मुनिराज ॥६२॥

---

१ विरक्त-भाव २ लोक के लिए जहाज के समान पार पहुंचाने वाले श्रेष्ठ पुरुष

छिद्र न दूषण ग्रहण से, ते न नाव के कांय ।
यह अछिद्र[1] नौका महाँ, भव जल तारक होय॥६२॥
संग रहित, संजम मई, जब वाजे शुद्ध वाय ।
जीत व्रतरूप जहाज तब, भवसागर तिर जाय ॥६३॥
खेवटिया न गुरु समा, जिनके नाहिं प्रमाद ।
आप तिरे तारें रिषी, रहित विषाद विवाद ॥६४॥
श्री भगवान सुजान से, और न सारथवाह[2] ।
भवसागर भयरूप में तेहि करें निबाह ॥६५॥
नित्य स्वरूप विलास सों, वर ध्यान नहि वीर ।
निज चेतन धन ले मुनि, पहुँचे निजपुर धीर ॥६६॥
धर्म नाव गुरु खेवय्या, सारथवाह जु देव ।
यह वर्णन व्यवहार है, निश्चय आतम एव ॥६७॥
आतम भाव अनूप जो, ता सम और न दीप ।
भव सागर के पार है, दिपै सदा देदीप[3] ॥६८।

---

१ बिना छेद वाली २ सारथी-केवट ३ देदीप्यमान
प्रज्वलित

ताहि कहैं निर्वाण अर, मोक्षहू कहैं मुनिन्द ।
कहैं अभय-पुर भोव-पुर, शिवपुर कहैं जतींद[1] ॥६९॥
ये निजपुर के नाम सब, फवें[2] जाहि सब चोप[3] ।
नग्र निरूपम निर्मला, है निरलेप अछोप ॥७०॥
बसै दीप सब के सिरै, जहां न जम को जोर ।
चोरन जोरन जार को, होय न कबहू सोर ॥७१॥
दौलत रूप अनूप सो, दीप दोष ते दूर ।
संपति ज्ञान विभूति जो, हैं तातें भरपूर ॥७२॥
निज पुर वासी होय के, भावसमुद्र विलास ।
तहैं भवोदधि तें सदा, दूर रहे सुखरास ॥७३॥
भव समुद्र भव-वन यहै, यहि भवानल रूप ।
अंधकूप विडरूप यह, तिरैं महा मुनि-भूप ॥७४॥
भव समुद्र वर्णन भया, उर धारे जो धीर ।
सो न परे भवसिंधु में, तिरै तुरत भव नीर ॥७५॥

---

१ यतीन्द्र-मुनियों में श्रेष्ठ २ शोभा पावे, अच्छा लगे ३ उपमाएं

ज्ञान-गिरि वर्णनम्

अचल अटल अति विमल, है जगदीश्वर जस रासि ।
ताहि प्रणमि नमि सूत्र को, श्री गुरु गुण परकासि॥१॥
भाषों सुथिर स्वभाव मय, गिरिवर अचल स्वभाव ।
क्रीडानिधि क्रीडा करै, जापर चेतन राव ॥२॥
अचल सुथिर भावान से, क्रीडागिरि नहिं कोय ।
रतनाचल रम्या चला, तहां न कंटक जोय ॥३॥
अति उत्कृष्ट उत्तमा, उच्च सबनतें जेहि ।
अचल भाव ते अचल हैं, और न अचल गनेहि ॥४॥
रतन न निज गुण रतन से, अस्ति स्वभाव अनंत ।
चेतनता आदिक महा, थिर गिरि मांहि रहंत ॥६॥
परम पुनीत पदार्थ जे, है तिन को यह थान ।
जहां मगन भावान सो, सघन वृक्ष रसवान ॥७॥
भरयो सदा रस वस्तु तें, अमृत रूप अनूप ।
जहां कुपक्षी एक नहिं, चंचल भाव स्वरूप ॥८॥
उज्ज्वल निर्मल भाव से, परम हंस नहिं और ।
यही ज्ञान-गिरि धर्म-गिरि, है हंमन की ठौर ॥९॥

निजधारा कल्लोलनी, बहै अखंडित धार ।
ता सम तटनी[1] और नहि, जाको पार न वार॥१०॥
सो उतरे या गिरि थकी[2], सुख सागर के मांहि ।
सदा समावे सास्वती, यामें संसय नाहिं ॥११॥
गिरि पर समरस सरवरा, गिरि निजपुर के पास ।
सदा ज्ञान अनुभूति मय, वेलि रही परकास ॥१२॥
सदा प्रफुल्लित भाव मय, फूल रहे अति फूल ।
महा सुधारस भावफल, फलै हरें भ्रम भूल ॥१३॥
क्रोध अगनि कामागनी, लोभ मोह मय आग ।
देखत ही भावा चला, तुरत जांहि सब भाग॥१४॥
ज्ञानागनि ध्यानागनी, धूम रहित परकास ।
तेज अगनि प्रज्वलित है, जाकर भर्म न भास ॥१५॥
धूम न कर्म कलंक सो, ताको तहां न नाम ।
नहीं वाय चल भाव मय, यह पर्वत निजधाम॥१६॥
बहे वयार असंगता, तिसी न सुन्दर वाय ।
यह क्रीडागिरि थिर गिरा, रमणाचल कहवाय ॥१७॥

---

१ नदी तटोंवाली २ पास

दुष्ट कठोर कुभाव जे, पाहन तेहि बखान ।
छुद्र रंक भावान से, कंकर और न जान ।।१८।।
या गिरि में नहिं पाहना[1], कंकर कोइ न होय ।
रतनन को पर्वता, आपहि मांहि सोय ।।१९।
अति ही कृपणता नांन्हपन; जाचकता जग मांहि ।
तिसी न नान्ही[2] कांकरी, ते या गिर पर नाहि।।२०।
शठ पशु नहिं कामीन से, ते गिरि पर न लगार ।
दुष्ट पशु न पिसुतान[3] से, तिनको नहिं संचार।।२१।।
पिसुन कहावें पापिया, गहै दोष पर जेहि ।
पिसुन न पैखे वर्वता[4], थिरता रूपक देहि ।।२२।।
गिरिपर हिंसा नाम नहिं, नहिं हिंसा परिणाम ।
यह पहार निज धाम है, रमे आत्माराम ।।२३।।
खलनर खल तिर खल असुर,लख न सकै गिरिराज ।
दिव्यभाव निज तेहि सुर,तिनके तहां समाज ।।२४।।
फूल रहे भावा कमल, अमल अलेप स्वरूप ।
समरस सर वर के विखें[5], थिरगिर पर सद्रूप।।२५।।

१ पत्थर २ छोटी ३ चुगल खोर-धोखेबाज ४ दुष्टता
५ बीच मे

निजरस वेदक भाव जे, तेहि भंवर भ्रम दूर।
ते रमणाचल ऊपरे, रमे सदा भरपूर ।।२६।।
आतम अनुभव केलि सी, और न कोयल कोय ।
सो गिरि ऊपर है बनी, अति सुख दायक सोय।।२७।।
माया जाल न है तहां, जहां न विकलप जाल ।
विष तरु अघ कर्म न जहां, पर्वत बहुत विशाल।।२८।।
विष वेलि न ममता तहां, समता अतुल अपार ।
ये विषफल दुखमय तहां, गिरिपर ते न लगार।।२९।।
नहीं काल अजगर जहां, और न अघकर कोय ।
है सुखकर यह पर्वता, निजपुर निकटहि होय ।।३०।।
नहिं कंटक क्रोधादि का, नहिं मन मर्कट-केलि[1] ।
मोर प्रमोद स्वभाव से, तिन की रेलि जु पेलि।।३१।।
गुफा ज्ञानमय ध्यान मय, तिनकर शोभित येह ।
शिखर शुद्ध भावान से, धारे अचल अछेह ।।३२।।
या पर्वत की तलहटी, शुभाचार शुभरूप ।
अशुभ दैत्य दूरे रहै, थिर गिरि अमल अनूप ।।३३।।

---

१ बन्दरों की क्रीडा

महा मुनिंद्र गिरिंद्र पर, राजे शान्त स्वरूप ।
रहे राज हंसा सदा, आतमराम अनूप ॥३४॥
सुख की बात अनंत हैं, दुख की एक हु नाहिं ।
यह सुख शिखरी सर्वथा,नहिं भवसागर माहिं॥३५॥
इहै भाव गिरि भूप गिरि, भाव नगर के पास ।
बिना अभयपुर थिरगिरा,नहिं भव बन मे भास॥३६॥
यह निज क्रीडा गिरि कथा, उर मे धारे संत ।
सो क्रीडा गिरि ऊपरे, क्रीडा करे अनंत ॥३७॥
क्रीडा नाम न और को, क्रीडा निज अनुभूति[1] ।
जो निज सत्ता में रमे, विलसे[2] ज्ञान विभूति ॥३८॥
वस्तु अमूरत चेतना, है अनुपम अविकार ।
आपहि निजपुर है परा, आपहि सिंधु अपार ॥३९॥
आपहि निज सर निज वना, आपहि है रस कूप ।
निज विभूति वापी विषै, केलि करे चिद्रूप ॥४०॥

---

१ आत्म चिन्तवन २ प्रकट होवे

मान-गिरि-वर्णनम्

मोह न मान न मन-मथा, मन न वचन नहि देह।
गेह न नेह न राग रिस, राजै राव अछेह ॥ १ ॥
ताहि प्रणमि नमि भारती, अनेकांत अविकार।
भाखों[1] मान महीधरा[2], नमि मुनि संजम-धार ॥२
नहि मान गिरि सारखो, और विषम गिरि कोय।
महा नीच यह गर्व-गिरि, नीचन को घर होय ॥३॥
निर्दय दुष्ट स्वभाव से, और न खल तिरयंच।
या पर्वत पर बहु रहें, जिनके दया न रंच[3] ॥ ४ ॥
क्रूर दृष्टि कोपाधिका[4], तेहि केसरी आदि।
जानहु भाव विकार मय, विष भरया सर्पादि ॥५॥
उडत रहे विभाव में, धरहि कुपक्ष कुभाव।
तेहि कुपक्षी हिंसका, तिन को तहां प्रभाव ॥ ६ ॥
कायर चपल स्वभाव जे, वन पशु तेहि मृगादि।
विचरें गिरि पर भय भरे, भाव हि विषय विखादि[5] ॥६

---

१ वर्णन करूँ २ पर्वत ३ तनिक ४ अत्यन्त क्रोध वाला ५ विषय रूपी घास

पातक से नहि पारधी, अति परपंच स्वरूप।
ते पर्वत पर अहिनिशि[1], फिरे महा विडरूप ॥८॥
कठिन कठोर स्वभाव से, और न पाथर[2] जोय।
है पाथर को पर्वता, रतन कहां ते होय ॥ ९ ॥
कुटिल कुवृत्ति कुभाव से, कंकर कोय न और।
प्राणिन को पीड़ा करे, यह गिरि तिन की ठौर ॥१०
औरन को नीचे गिने, यहे नीच वृत्ति होय।
छुद्रवत्ती ते कांकरी, नान्हीं निश्चय जोय ॥ ११ ॥
पाथर कांकर कांकरी, तिनसों भरयो पहार।
महा कष्ट को थान[3] यह, तू मति करे विहार ॥१२
है कटक क्रोधादि का, मद-गिरि माहि अपार।
सदा विपक्षी यहां रहै, मिथ्यात्वादि विकार ॥१३॥
मोर विपत्तनि को सदा, मोर पशुन को ठौर।
जोर कुजीवन को तहां, जहां न अमृत नीर ॥ १४ ।
नहीं अविद्या सारखो, विष वल्ली विषरूप।
सो गिरि पर विस्तरि रही, दुखदायिक दुख रूप ॥१५

---

1 रात-दिन 2 पत्थर 3 स्थान

जाल न माया जाल सो, यह गिरि जाल स्वरूप ।
भरयो आल जंजाल को, विकलप रूप विरूप ॥१६॥
विष तरु वरन विभाव से, भरे अनेक विकार ।
यह विष वृक्ष मई सदा गरब पहार असार[1] ॥१७॥
है विष फल नरकादि जे, यह गिरि बिषफल रास ।
शुभ को लेश न है यहां, नहिं गुण मणियाँ पास।१८
विषय फूल बन फूल से, और न विष के फूल ।
फूल रहे तरु तिन थकी, तहां जाय मति भूल ।।१९
सदा कुपत्र परे यहां, महा अपात्र स्वरूप ।
मिथ्या सूत्र कुवायते[2], उड़े फिरें जड़ रूप ॥२०॥
नहि अध्यातम तंत्र से[3], अमृत तरु गिरि माहि ।
नहिं अध्यातम वृत्ति सी, अमृत वायु लखाहिं ।।२१।
नांहि मान गिरि के विषै[4], सदा प्रफुल्लित भाव ।
नाहिं सुधाफल परम फल,यह गिरि विषम लखाव२२

---

१ सार-हीन २ बुरी हवा से ३ आत्मा सम्बन्धी सिद्धान्त समान ४ में

नाहिं शुद्धता सारखी, गिरि पर अमृत वेलि।
विमल भाव हंसान की, तहां न कबहु केलि ॥ २३।
नहीं अमृत सरवर जहां, समरस भाव स्वरूप।
भरे शांत रस नीर ते, दाह-हरण सद्रूप ॥ २४ ॥
भाव अलेप[1] अलेप मे, तहां सरोज[2] न कोय।
सर विनु होय सरोज क्यों, तह निश्चै अवलोय[3]।२५
भाव रसज्ञ सुविज्ञ[4] से, अमरत भ्रमे कदाच[5]।
काहे मद गिरि ऊपरे, रहे मूढ जन राच[6] ॥२६
नही मगनता भाव मय, या परवत पर मोर।
नहिं कोयल कल-कंठ ह्यां, अमृत धुनि मन चोर।२७
या गिरि तें नहि नीसरे[7], अमृत सरिता सार।
ज्ञानामृत धरा मई, आनन्दी अविकार ॥ २८ ॥
या गिरि ते आशा नदी, वांछा रूप विशाल।
निकले ममता मूरती, मानो परतख[8] काल ॥ २९॥

---

१ अलिप्त २ कमल ३ समझो ४ चतुर ५ कदाचित् हो भ्रमण करें ६ लिप्त, रंजायमान ७ उत्पन्न होती हैं ८ प्रत्यक्ष

यहां भरे दुख मरवरा, विष जल तें विकराल ।
विचरे चोर निरन्तरा, मन इन्द्रीं असराल[1] ॥३०॥
ठग न भूर्तं भावान से, यहै डगन को थान ।
पर बाधक अपराध मय, बसे व्याध बलवान ॥३१
असुरन अशुभाचार से, दुराचार के साथ ।
यह असुरन को आश्रया, असुराचल[2] कहवाय ॥३२
दैत्य दानवा दुष्ट जन, दगादार से नाहि ।
पर दुख दायक दुरत धर, रहै बहुत गिरि माहि।३३
नहि पिशाच पापान से, भूत न भर्म समान ।
व्यंतर नहि विपरीत से,तिन को धन गिरि मान ।३४
यह भूतन को पर्वता, है दैत्यन की केलि ।
सदा पिशाचनि को पुर, रहे निशाचर खेल ।।३५।।
रागादिक रजनीचरा, पर्वत के सिरदार ।
मोहासुर असुरेस को, जिनकी भुज पर भार । ३६।।
मद गिरि मे माया गुफा, करै मूर्छा भाव ।
द्रोह सरवर संशयमयी, तहां धरे मति पांव ।।३७।।

---

१ बड़े २ दैत्यों का पर्वत

महा वधिक बाधाकरा[१], पापधारका क्रूर[२] ।
विचरे दुर्जन भाव अति, यह गिरि सुख ते दूर ॥३८
यही पाप-गिरि ताप-गिरि, कबहु न क्रीडा जोग ।
बसे रौद्र भावादिका, पशुनर असुर अजोग ॥ ३९॥
मंगल कारी मूल नहि, सबै अमंगल भाव ।
यही विघन-गिरि विषम गिरि, धारे बहुत विभाव४०
आम अग्नि क्रोधाग्नि लोभानल[३] विकराल ।
दोष अग्नि दुख अग्नि अति, काल अग्नि असराल[४] ४१
मोह अग्नि सब मे सरस, जाकर जगत जलाय ।
इनसी अग्नि न लोक में, भव भव ताप कराय ॥४२
आत्म-भाव विपरीत ही, विनु समरस न बुझाय ।
सो सम रस नहि गिरि विषै, सदा अग्नि भवकाय।४३
इन सी नाहिं दवानला, नहि बडवानल होय ।
नहिं वज्रानल विश्व में, नहिं प्रलयानल कोय ॥४४।

---

१ बाधा करने वाले २ निर्दयी ३ लोभ रूपी अग्नि
४ भयंकर

मोहादिक मोटी अगनि, सदा प्रज्वलित रूप।
यही गर्व गिरि अग्निमय, दाह रूप विडरूप ॥४५॥
भ्रान्ति समान न वायु को, वाजे जहां असार।
कहिये झंझा[1] जाहि को, धारे महा विकार ॥४६॥
नहि वन उपवन सुखमयी, यहां न रस को नाम।
यहै मान अज्ञान मय, नहीं ज्ञान को काम ॥४७॥
लंघिमान[2] गिरि मुनिवरा, लेय भाव भडलार।
पहुंचे निजपुर धीरधी[3], जहाँ न एक विकार ॥४८॥
यही मान-गिरि दोष-गिरि, भव वन माँहि अनादि।
शिवपुर सों दूरो सदा, जहां वसें विरसादि ॥४९॥
मानाचल की तलहटी, समल स्वभाव समस्त।
मानाचल के आसरे[4], होय ज्ञान रवि अस्त ॥५०॥
वर्णन गर्व पहार को, पढ़े सुने जो कोय।
सो मद गिरि पर नहिं चढ़े, बढ़े ज्ञान सुख होय ॥५१

---

१ आंधी २ पार करने वाले ३ धैर्यवान ४ आड़ में-पीछे।

निज-गंगा-वर्णनम्

गुण समुद्र गुण नायको, सब जन सेवैं जाहि ।
सो सर्वेसुर सनमती[1], नमस्कार करि ताहि ॥ १ ॥
निज सरिता वर्णन करूँ, जामें स्वरस प्रवाह ।
जाहि लखें सब दुख मिटे, उपजै अतुल उछाह ॥२॥
नित्य निरंतर निर्मला, निज परिणति रस धार ।
वहै अखंडित धार जो, ता सम नदी न सार ॥ ३ ॥
केवल कला कलोलिनी, सदा सहज रस पूर ।
रमैं जा विषै रागहर, निज रसिया भ्रम दूर ॥ ४ ॥
नहि तरंग निज रंग सी, उठे तरंग अपार ।
नहिं अंत तटिनी[2] तनो, यह तटिनी अविकार ॥५॥
तट अनेकता एकता, ये द्वय अद्भुत रूप ।
भरी शांत रस नीर तें, नदी अनूप स्वरूप ॥ ६ ॥
पंक न पाप समान को, यामें पंक न लेश ।
हरे पाप संताप सहु, सरिता रहित कलेश ॥ ७ ॥

---

१ सनबुद्धि को देने वाले २ नदी

रंक भाव जे कौंमरा, नाहि नदी में कोय।
डाम्पर मांछुर विकलपा, तिनको नाम न होय ॥८॥
जड़ता भाव जु जलचरा, ते न कदाचित जान।
जल दैवत जग भाव जे, कबहूँ तहां न मान ॥९॥
मगर मच्छ नहिं मोह सों, महा पाप को धाम।
सो न पाइये ता विषै[1], रमे निजातम राम ॥१०॥
मिथ्यामारग पक्ष-धर[2], तेहि कुपक्षी क्रूर।
तिनतें रहित महा नदी, सर्व दोष ते दूर ॥११॥
है निकलंक निराकुला[3], अमृतरूप अबाध।
निज गंगा तासों कहैं, निज रस रसिया साध ॥१२॥
कर्म कलंक समान को, और न होय कलंक।
कर्म भर्म हर है नदी, सेवैं साधु निशंक ॥१३॥
कंकर भाव कठोर जे, कुमि कुभावना रूप।
ते न कदे[4] धारे नदी, अमृत रूप अनूप ॥१४॥

---

१ नदी में २ पक्ष को धारण करने वाले, अनुयायी ३ आकुलता से रहित ४ कभी

लोलुपता मय मीन जे, कूरम[1] करकम भाव ।
दुरवादी[2] दादुर भया, सरिता में न लखाव ॥१५॥
सरिता तटि तरुवर सघन, मगन भाव मय होय ।
विषतरु रूप न भाव खल, कंटक एक न कोय ॥१६॥
ममता रूप लता महा, जिसी न अमृत वेलि ।
सो तटिनी तट लहलहै, है हंसन की केलि ॥१७॥
शुद्ध स्वभाव मयी महा, परम हंस मुनि राय ।
तजे न तटिनी को तटा, भव आताप बुझाय ॥१८॥
माया बेलि न विषमयी, नहीं कलपना जाल ।
नाहि कालिमा कीट अर, संशय रूप सिवाल[3] ॥१९॥
उठे परम द्रह मांहि ते, मिले महोदधि माहि ।
यह अमूर्ति गंगा भया, चेतन पुरुष लहांहि ॥२०॥
नांहि रजोगुण रूप रज, नांहि तमो गुण मैल ।
नदी-निकट नहिं नीच नर, नाहिं कोई बद फैल॥२१॥
नदी अनादि अनंत यह, छेह[4] न जाको होय ।
बहै भाव की भूमि में विरला बूझै कोय ॥२२॥

---

१ कछुआ २ मिथ्यात्वी ३ सेवाल नामक घास
४ अन्त-पार

सरिता सत्ता रूप यह, अति कल्लोल स्वरूप ।
केलि ठौर चिद्रूप की, एक न जहां विरूप ॥२३॥
महा रतन की खान यह; महा सुखन को खान ।
गुण मानिक की रासि यह, रस रूपा परवान ॥२४॥
हरै जनम मरणादि भय, हरै पाप संताप ।
हरै रोग रागादि सहु, यह तीरथ निहपाप[1] ॥२५॥
याहि गगन गंगा[2] कहैं, निज रस रसिया धार ।
मगन होहि जे या विषै, ते न लहैं भव पीर ॥२६॥
निर्मल नभ सम रूप निज तामें करै विहार ।
तेहि विहंगम दुर्लभा, सरिता तीर अपार ॥२७॥
कमल समान कलंक बिन, बिमल भाव जे होय ।
तेई सरिता में रमैं, अद्भुत सरिता सोय ॥२८॥
नाहि प्रपंच स्वरूप ठग, मायाचार न चोर ।
लोभ लुटेरा नहि जहां, नहिं काहु को जोर ॥२९॥
मान मनो-भव[3] मन महा, मैं वासी भव माहि ।
ते तटिनी तटि दुरमति, कबहु दौरे नाहिं ॥३०॥

---

१ निष्पाप-पापरहित २ आकाश गंगा ३ काम

आशा रूप जु आसुरी[1], अशुभ असुर जे कोय ।
वांच्छा रूप जु व्यंतरी[2] व्यंतर विषय जु होय ॥३१॥
रसना रांक्ति जु राक्षसी, राक्षस रोस जु धूत ।
भ्रांति रूप जु भूतनी, भर्म स्वरूपी भूत ॥३२॥
दुरजनता जु दैत्यनी, दैत्य दंभ दोषादि ।
पातक वृत्ति पिशाचनी, पुनि पिशाच पिसुनादि[3]॥३३॥
ये नहि निज सरिता नखें. सरिता निजपुर पास ।
इन पापिन को सर्वथा, भव वन माहिं वास ॥३४॥
क्रूर भाव जे केशरी, व्याघ्र विभाव स्वरूप ।
व्याल[4] रूप जे व्याध खल, हिंसक महा विरूप ॥३५॥
अर अपराधी पारधी, अति निर्दय-परिणाम ।
कीर[5] विषय दरपादि पुनि, तिनको तहां न काम॥३६॥
फूल रहे तटनी तट, भाव प्रफुल्लित फूल ।
भ्रमें विचक्षण[6] भाव अलि, रसिक भाव के मूल॥३७॥

---

१ असुर जाति की स्त्री २ व्यंतर जाति की स्त्री
३ चुगलखोर ४ सांप ५ तोता ६ विचक्षण-चतुर

है निजधाम नदी महा, रमै आत्माराम ।
सुधा रूप सरिता यहै, संतन को विश्राम ॥३८॥
गुण अनंत मणि की महा, उर्मी मालिनी[1] खानि ।
परम स्वरूप पयोधि मैं, करै प्रवेश प्रवान ॥३९॥
निज अनुभूति अनूपमा, अमर दौलतो होय ।
निज अनुभूति लख्यां बिना, सरिता केलि न कोय ॥४०॥
निज समीप गंगा सदा, वहै अखंडित धार ।
करै स्नान जु ता विषै, सो पावै भवपार ॥४१॥

आशा-वैतरणी विष-नदी वर्णनम्

आशा नाहि धरै प्रभु सब वांछा तैं दूर ।
वंदौं परमानंद जु, गुण अनंत भरपूर ॥१॥
विष कल्लोलिनी विश्व मे, नहिं वाञ्छा सी कोय ।
विष नहि विषय विकार सो, भव भव दुख दे सोय॥२॥
आशा सी न तरंगणी, तृष्णा सी न तरंग ।
भवण न संशय सारखो, नहिं तिरबे को ढंग ॥३॥

---

1 लहरो वाली

भरी चाह विष नीर तें, नहीं ताप हर येह ।
कपट कीच कालिम मयी, भवि जन करें न नेह॥४॥
विकलप संकलपानि[1] से, और नहिं दुख रूप ।
सौ द्रु तट धारें सदा, आदि अनादि विरूप ॥५॥
विषवन विषम विभाव से, और नहीं जग मांहि ।
सो याके तट द्रीमई, जिनमें छाया नाहि ॥६॥
विष बेलि न ममता जिसी, सो आशा के तीर ।
फले सदा दुख विषफला, जहां न अमृत नीर ॥७॥
उपजावें जड़ता यहै, राग द्वेष की खान ।
खार महा दुर्गन्ध है, प्राण हरा परवान[2] ॥८॥
वाजें जहां विरूप अति, भ्रांति रूप जग वाय ।
सोई उडावे जगत को, यह भाखे मुनि राय ॥९॥
निकसे गिरि अभिलाष तें आशा तटिनी येह ।
पड़ी सो सागर सोच में, धारे अति संदेह ॥१०॥
बहे सदा भव वन विषें, आशा अति असराल ।
रोके शिवपुर की पथा, नदी महा विकराल ॥११॥

---

१ संकल्प विकल्पादि २ निश्चित रूप से

मोक्षहु की आशा महा, मोक्ष होन दे नाहि ।
कैसें भव भोगान की, आशा दोष हराहि[1] ॥१२॥
आशा आकुलता भरी, वांछा विकलप रूप ।
तृष्णा ताप मयी महा, तजें सदा मुनि भूप ॥१३॥
तुच्छ वृत्ति भींगर जहां, भाव लोलुपी मीन ।
मींडक वाचाली तहां, वृथा बके मति हीन ॥१४॥
भाव कठोर जु काछुवा, क्रमि[2] वु भाव मय मान ।
कीट कालिमा सों भरी, आशा नदी प्रवान ॥१५॥
काम क्रोध लोभादि मे, और न धीवर नीच ।
ते डारें भ्रमजाल खल, आशा तटिनी बीच ॥१६॥
मृत्यु समान न लोक में, महा मगर नहिं कोय ।
विचरे आशा मे सदा, निगले सबको सोय ॥१७॥
तिमिर सारखे तिमि[3] नहीं, तिनको तहां निवास ।
जड स्वभाव जलचर घने, करें आस में वास । १८॥
नाहिं अविद्या सारखी, जलदेवी खलभाव ।
वसै आस में सासती, धारें अतुल कुभाव ॥१९॥

---

१ नष्ट करदे, दूर करदे २ कीडे ३ बडे मच्छ

मैंना सी नहिं मोह सों, मारे मारग मोच ।
दौरे दुष्ट सदा जहां, हरे प्राण धन कोष ॥२०॥
नाहिं विभावनि से भया, जग में व्यंतर कोय ।
वशं श्राम में सासता, यह निश्चै अवलोय[१] ॥२१॥
पर वस्तुनि के ग्राहका, अभिलाषी परिणाम ।
तिनसे चोर न वंचका[२], आशा तिनको धाम ॥२२॥
कुपक्ष[३] धारका कुशब्दा, जेहि कुपक्षी क्रूर ।
ते सब आसा तीर हैं, दया भाव तें दूर ॥२३॥
हिंसक कुटिल कुभाव जे, ते सिंहादिक जीव ।
सदा आस तटनी तटैं, विचरे महा कुजीव ॥२४॥
सर्पन कंदर्पादि[४] से, तिन को तहां निवास ।
सदा कुवस्तुनि सों भरी, यहै तरंगणी आस॥२५॥
मल नहिं राग विरोध से, आशा अति मल पूर ।
विमलभाव हंसा महा, ते तटिनी तें दूर ॥२६॥
आशा तटी मुनीवर महा, रहैं न कबहु धीर ।
अति अपराधी पारधी, विचरैं दुर्जन कीर ॥२७॥

---

१ जानो २ ठग ३ बुरे पंखवाले ४ कामदेव

वैतरणी हू न था समा, आशा नदी असार।
उतरें कोइक साधवा, महाव्रती अनगार[1] ॥ २८ ॥
अध्यातम विद्या जिसी, और न उत्तम नाव।
पार उतारे सो सही, वायु विराग प्रभाव ॥ २९ ॥
बैठन हारे नाव के, सम्यक दृष्टि धीर।
तिन से तेरु[2] और नहि, ते उतरे भव नीर ॥३०॥
आशा मे बूडे घने, बूडेंगे जो अनन्त।
पार ऊतरे मुनिवरा, कोइक संजम-वंत[3] ॥३१॥
गुण नहि दर्शन ज्ञान से, जिनकर जकरी नाव।
रहित परिग्रह भार ते, उतरैं गुरु प्रभाव ॥ ३२ ॥
तिरे आसा मुनिवर महा, त्याग जगत जंजाल।
बसैं निराकुल[4] होय के, निजपुर में तत्काल ॥३३॥
निजपुर सों नहि कोई पुर, जहां काल ते नाँहि।
गुण अनंत निजपुर विषै सुख अनंत जा माँहि ॥३४

---

१ गृह रहित-मुनि २ तिरने वाले ३ संयम।
४ आकुलता रहित

यह आसा कल्लोलिनी, संकट रूप सिवाल[1] ।
कंटक विषय कषाय से, बहुत कलपना जाल ॥३५॥
तहां जाय मति मित्र तूं, तज आशा को तीर ।
विष सरिता आशा जिसी, और न जानो वीर ॥३६
यह आसा वर्णन भया, जे धारैं उर मांहि ।
ते वूडे नहिं आस में, सुख संतोष लहांहि ॥ १७ ॥
निज दौलत अविनश्वरी, सत्ता रूप अनूप ।
विलसे चेतन पुर विषै, चिदानन्द चिद्रूप ॥ ३८ ॥

भाव समुद्र-वर्णनम्

सुख सरवर के जोर ते, दमैं[2] दोष दुख देव ।
नमैं नाग नरनाथ मुनि, करैं सुरासुर सेव ॥ १ ॥
ताहि प्रणमि नमि भारती, भाषित भगवत भूप ।
कर प्रणाम गुरुदेव को भाखों निजसर[3] रूप॥ २ ॥
सरवर समरस सो नहीं, भरयो सहज रस नीर ।
तरुवर सघन स्वभाव से, तहां विराजे धीर ॥ ३ ॥

---

१ एक प्रकार की घास-सेवाल २ दलन करैं
३ आत्म-समुद्र

अति शोभित सुख-सरवरा, हरै दाह दुख दोष।
पालि जु सत्ता सारखी, अचल अटल निरदोष ॥४॥
यह सर सत्ता माहि है, उठै लहर आनन्द।
वस्तु न दूजी जा विषै, केवल परमानन्द ॥ ५ ॥
कीच न कर्म कलंक सो, नहि कलंक को काम।
या सम अमृत सर नहीं, यह सरवर निज धाम ॥६
नीर जु निर्मल भाव सो, जाकर तृषा बुझाय।
यह सरवर सूखे नहीं, रस भरपूर रहाय ॥ ७ ॥
भाव अलेप अछेय[1] से, अद्भुत अम्बुज[2] होय।
सदा प्रफुल्लित सर विषै, तिन से कमल न कोय ॥८
निज लक्षण मय लक्ष्मी, भाव सरोजनि माहिं।
वसे सदा सुख सासती, जा सम कमला नाहि। ६
सुख नहि निरविकलप[3] समो, आतम अनुभव रूप।
जहां न इन्द्री मन वचन, बुद्धि न वस्तु अनूप ॥१०
केवल अनुभव केलि सी, और न अमृत वेलि।
परम भाव फल फलि रही, निजसर तटि रस रेलि ।११

१ बहुत अधिक २ कमल ३ संकल्प विकल्प रहित

भमर[1] न भाव रमज्ञ से, अति रस रसिया जेहि ।
भाव अलेप[2] सरोज पर, केलि करैं नित तेहि ।।१२
हंस न उज्वल भाव से, स्वपर विवेकी वीर ।
यह हंसन को सरवरा, हिंसा-हर गम्भीर ।।१३।।
परम हंस मुनिराज जे, अंस[3] न धरैं कलंक ।
ते यामे क्रीडा करैं, निशि वासर निहसंक[4] ।।१४।
सार भाव से सारिसा, तजे न यह सर कोय ।
चकवा चेतन भाव से, कबहु न विरहो होय ।१५।।
जहां निशा नहिं भ्रांति मय, चकवी को न वियोग ।
नहिं चकवी निज शक्ति सी, रहे सदा संजोग ।।१६।।
ज्ञान भान भासि जु रह्यो, जाको अस्त न होय ।
यह अद्भुत सरवर भया, वर्ण सकै नहि कोय ।।१७।
गुण रतनानि की राशि यह, रहित रजो गुण रेत ।
वर्जित तामस[5] ताप सहु[6], संतनि को सुख देत ।।१८

---

१ भ्रमर-भौंरे २ अलिप्त-कमल का पत्ता पानी में पैदा होकर भी पानी से भीगा नही रहता ३ तनिक ४ निशंक ५ उग्रभाव-क्रोधादि की गर्मी ६ सब

इन्द्री सुख दुख ते सदा, यह सर दूर अनादि।
भाव अतिन्द्री अति धरे, जहां नहीं रागादि ॥१९॥
निज पदनि को धाम यह, सब कुपद्य वितीत।
है पवित्र पीयूष[1] सर रमे पुरुष जग जीत ॥२०॥
रहित शुभाशुभ शुद्धसर, भाव प्रबुद्ध स्वरूप।
महा मोह मगर न जहां, तहाँ न एक विरूप ॥२१॥
काई काम क्रोध मय, सर को परसि सकै ना।
सर्व विभाव विकार मय, व्यंतर एक रहे ना ॥२२
जाचक भाव समान नहीं, नून भाव जग माहिं।
तेही फींगर जानिये, तिन को नाम हू नाहिं ॥२३।
दादुर वृथा विवाद जे, मच्छी विकल स्वभाव।
कदरज[2] भाव जु काछुवा, सर में नाहि लखाव ॥२४
कीट कल्पना जाल जे, डांमर दुष्ट कुभाव।
मांछर मच्छर भाव जे, तिन को नहां अभाव ॥२५।
नाना विधि वरणादिका, जड़ता भाव अनेक।
ते जलचर नहि ता विषै, भाव अशुद्ध न एक ॥२६

१ अमृत २ बुरा रत

विषय विकार विनोद मय, विष वृक्ष न सर तीर ।
विष वेलि न विभ्रान्तिता- भाव विषमता वीर ॥२७
माया जाल न है जहां, ममता मोह स्वरूप ।
पाप वासना रहित सर, आप स्वरूप अरूप ॥२८
जहां न भय को नाम है, अभय सरोवर यह ।
अभय नगर के निकट ही, परमानन्द अछेह ॥२९॥
दुराचार दुर-भाव जे, दुर-विकलप दुख दाय ।
दुरित रूप ते दानवा, तहां धरे नहि पाय ॥३०॥
असु प्राणनि को नाम है हरे प्राण पर जेहि ।
असुर अशुचि अति हिंसका,भाव न सर में तेहि ॥३१
विषय राग रत राक्षसा, रसना[1] लंपट भाव ।
रमनी रत रजनीचरा, तिनको तहां अभाव ॥३२॥
इन्द्री भोग मयी भया, भाव भूत भ्रम रूप ।
ते न कदे[2] सरवर लखें, जहां छांह नहि धूप ॥३३
आसा नाम जु आसुरी[3], सर को नाम न लेय ।
पर निन्दा जु पिशाचिनी, पाँव न तहां धरेय ॥३४।

जिह्वा २ कभी २ ३ राक्षसी

मल ना कोई मिथ्यात्व सो, जहाँ न मिथ्या भाव।
जोग सदा आनन्द को, सम्यकज्ञान प्रभाव ॥३५॥
वंचक नाहि प्रपंच से, चोर न चित्त से कोय।
ठग नहिं छल पाखंड से, सबसे वर्जित सोय ॥३६
नाहि विपर्यय भाव से, वटपारे[1] विपरीत।
मारें मारग मोक्ष को, धारे सदा अनीत ॥३७॥
तिन को नाहिं समाय है, गाजै चेतन राय।
लूट सकै नहिं लोक को, लोभ लुटेरा आय ॥३८॥
दौरा दौर सकै नहीं, दंभ दोष दुख आदि।
अनाचार[2] अपराध मय, जहां न जल का गाद[3] ॥३९
भाव विराधक कुटिल अति, आरति रौद्र कुध्यान।
बुग[4] ते ही गनि ठग महा, जहाँ नदी बलवान ॥४०
अविधि अजोग अरीति नहीं, निज तडाग तटि कोय।
शुद्ध बुद्ध आनंद मय, सिद्धनि को सर सोय ॥ ४१।

---

१ डाकू २ कुरीति-दुराचार ३ मल-छूट, मैल, काई आदि ४ बगले

त्रिविधि ताप-हर पाप-हर, हरण सकल संताप।
यह निज सर सुख धाम है,रमे आप निह-पाप ।।४२
परम मनोहर सर सदा, रतन-सरोवर यह ।
राज सरोवर है भया, क्रीडा जोग अछेह ।। ४३ ।।
स्वरस स्वसंवेदन[1] समो, नहीं और रस स्वाद ।
अमर अनुपम सर यहै, जहां न हर्ष विषाद ।।४४।।
मरे न काहू काल ही, निज सरवर रस पीय।
रहें मगन निज भाव में, सदा सर्वदा जीय ।।४५।।
भाव नगर के निकट हि, भाव सरोवर होय ।
रम्य महा रमणीक अति, सुन्दर सरवर सोय ।।४६।।
शुद्ध सरोज निवासनी, निज सत्ता अनुभूति ।
करे केलि सुख सर विषे, केवल ज्ञान विभूति ।।४७
यह सम-रस सर वर्णना, पढ़े सुने जो कोय।
सो अविनाशी पद लहै, निज दौलतपति[2] होय।४८

---

१ स्वयं का ज्ञान-मनन

२ आत्म ध्यान का धारी

विभाव-सरोवर वर्णनम्

चेतनभाव मयी सदा, चिदानंद चिद्रूप ।
सर्वभाव विनीत जो, ज्ञानानंद स्वरूप ॥१॥
शीतल विमल अनंत गति, धर्मधुरंधर देव ।
शांत भाव सब कर्म हर, करैं सुरा-सुर सेव ॥२॥
जाकी भक्ति प्रभाव सों, उपजै आतम बोध ।
लखे आपमें आपको, करैं करम को रोध[1] ॥३॥
काढे विकलप सर थकी, निरविकपल रस पाय ।
टारे मनमथ[2] मोह मल, सो त्रिभुवन को राय ॥४॥
ताके चरण सरोज नमि, प्रणमि सार सिद्धान्त ।
विकलप सर वर्णन करूं, तजैं जाहि मुनि शांत ॥५॥
विष-सर विकलप-सर समो, नहिं संसार मंझार ।
महा विषम सर मलिन सर, जामें रंच न सार। ६॥
अति सकलपा विकलपा, तेई विष जलधीर ।
भरयो सदा विष नीर ते, विष तरु ताके तीर ॥७॥

---

१ रुकावट, रोक २ कामदेव

विषतरु विषै कषाय से, और न जानों कोय ।
सर्व विभाव विकार मय, सदा मरण दे सोय ॥८॥
पाप पालि ते बांधियो, यहै ताप सर आप ।
महा विकट सर भर्म सर, देय सदा संताप ॥९॥
नहीं दाह-हर दोषहर, नहीं रम्य सर येह ।
हंस न शुद्ध स्वभाव से, करै न या सों नेह ॥१०॥
कीच न काम कलंक सो, यही पंकते पूर ।
अमृत जल निज अनुभवा, सदा या थकी[१] दूर॥११॥
अमृत वृक्ष न बोध से, फले विमल फल भाव ।
ते विकलप सर तीर नहिं, यह निश्चै ठहराव ॥१२॥
निज प्रवृत्ति भव निरवृत्ती, ता सम सुधा न वेलि ।
सो विष सरवर तट नहीं, जामें रस की रेलि ॥१३॥
अशुभ कर्म से वृक्ष—विष, विषै बुद्धि विष वेलि
तिनकी विकलप सर निकट, दीखै रेलि जु पेलि॥१४॥
जल काग न जड भाव से, तिनको तहां निवास ।
बुग नहिं पाखंडीन से, तिनको सदा विलास ॥१५॥

---

१ से

बुद्धि वियोगी बहिरमुख, बहिरातम भव भाव ।
तेई चकवा ताविषैं, विरह रूप दरसाव[1] ।।१६।।
निशि न अविद्या सारखी, तिमिर रूप दरसाय ।
तामें चकवी चेतना, व बहु लखी न जाय ।।१७।।
जगत वासना सारखी, और न कोई कुवास ।
फैल रही विषसर विषै, रोग सोग परकास ।।१८।।
मल नहिं राग विरोध से यह मल-सर छलपूर ।
खल सर अखिल विभावमय, सुन्दरता सो दूर।।१६।।
मिथ्या मारग पक्षधर, हिंसक दुष्ट स्वभाव ।
तेहि कुपक्षी कुशबदा तिनको सदा प्रभाव ।२०।।
मीन न दीन स्वभाव से, अति मलीन मति हीन ।
ते विचरे-विष सर विषै, अति चंचल अघलीन[2]।।२१।।
वृथा बकै वितथा[3] लपे, लोभी लंपट भाव ।
तिनसे भेक न और को, धरें विवेक अभाव ।।२२ ।
दादुर डेडर भेक ये, हैं मींडक के नाम ।
ये मींडक को सरवरा, काल नाग को धाम ।।२३।।

---

१ दिखाई देती है २ पापी ३ झूठ

मुंह मीठी बातें करैं, पीछे अति ही कठोर ।
तेई काछुवा सर विषैं, जहां अशुभ को जोर ॥२४॥
नान्हों मन नांन्हीं दशा, कृपण सदा परिणाम ।
ते ही झींगर जानिये, मल सर तिनको धाम॥२५॥
धीवर कुकरम भाव जे, चालें अधरम चाल ।
ते विचरें विष सर नख, धारें विकलप जाल ॥२६॥
मगर न होइ मही विषे, महा मोह सो कोय ।
सुर नारक नर तिरंचनि, निगले पापी सोय॥२७॥
वशे सदा विषसर विषैं, रूप महा विकराल ।
अवरहु जलचर भाव खल, जामें अति असराल॥२८॥
सो कुपक्षनि को सदा, मारिस जुगल[१] न कोय ।
सारिस-दर्शन ज्ञान[२] से, और न जग मे होय ॥२९॥
दुख-दाई दोर्षाक जे, दया रहित परिणाम ।
दैत्य दानवा ते महा, खल सर तिनको धाम ॥३०॥
दुष्ट वृत्ति दुर्जन दशा, दुर्गति दाई रीति ।
तेहि दैत्यनी बहुवसैं, मलसर में विपरीत ॥३१॥

---

१ सारसों का जोड़ा २ क्षीर-नीर विवेक साम्य भाव

अशुचि अशुभ अव्रत मयी, अरि समान अघ भाव ।
असुर-असंयम रूप जे, तिनको तहां प्रभाव ॥३२॥
आकुलता अविवेकता, आशा आरति[1] रूप ।
बसै अविद्या आसुरी, विषसर विषैं विरूप ॥३३॥
रमं राग धर भोग में, जग अनुरागी भाव ।
रस-अनरस न राक्षसा, तिन को तहां बसाव ॥३४॥
रति अरति अति राक्षसी, रसना लोलप रीति ।
सर्व कुरीति लियां[2] बसै, विषसर मे विपरीत ॥३५॥
भय विभ्रम-मय भाव जे, तेहि भूत भ्रम जाल ।
येह भूतनि को सरवरा, रहैं भूत विकराल ॥३६॥
भोग भावना भूतनि, भ्रांति स्वरूप विरूप ।
भ्रमें सदा भ्रम सर विषैं, भय कारी विडरूप ॥३७॥
परदारा परधन हरा, पर द्रोही परिणाम
ते पिशाच पापी करैं, विषसर मे विश्राम ॥३८॥
पराधीनता पापिनी, मिथ्या परिणति रूप ।
पाप प्रवृत्ति पिशाचनी भवजल में भय रूप ॥३९॥

---

१ खेद २ लेकर

सर्व विभाव विकार जे, विषय विनोद अशेष[1] ।
ते विंतर विषसर विषैं, वैरी वसैं विशेष ॥४०॥
वृत्ति प्रवत्तनि की सदा, निवृत्ति धरै न जोय ।
सोई व्यंतरी बल वती, मल सरवर में होय ॥४१॥
दुरा-राध्य[2] दुरनीतिधर, दुर्जय दुसह स्वभाव ।
ते दौरा दौरे सदा, अति दोषादि कुभाव ॥४२॥
अति प्रपंच मय बंचका, माया मदन मनादि ।
पूति सरोवर तीर हाँ, बंचै विश्व अनादि ॥४३॥
भाव चलाचल चपल गति, तृष्णा रूप विरूप ।
ते तसकर कुतडाग तटि, चोरी करे कुरूप ॥४४॥
लोभादिक लंपट महा, तेहि लुटेरा वीर ।
लूटहि सर्वहि लोक को कोयक उवरें[3] धीर ॥४५॥
वट पारे कुविशन[4] महा, जुवा मद मांसादि ।
वेश्या परधन हरणता, परदारा हिंसादि ॥४६॥

---

१ सम्पूर्ण २ कठिनाई से आराधना करने योग्य
३ उद्धार पावें, छुटकारा पावे ४ कुव्यसन

रोके पथ निर्वाण को, रहैं पाप सर पाल ।
तिनकर जगके जीव ये, सकै नहीं संभल ॥४७॥
ठग नहिं जग के भाव मे, ठगैं ज्ञान सो माल ।
बसैं सदा छल सर निकट, करैं बहुत बेहाल ॥४८॥
अति ठगनी भव भावना, ठगैं सुरा-सर सोय ।
कोइक उबरैं साधवा, संजम जिन पै होय ॥४९॥
अभख भखका हिंसका, करैं कुशील विहार ।
तिनसे अपराधी नहीं, ते सर तीर अपार ॥५०॥
यह सरवर नहिं केलिको, कबहू रमन न जोग ।
तहां जाय मति मित्र तूं, सबही बात अजोग॥५१॥
है पिशाच-सर पिसुन-सर, विकट सरोवर वीर ।
कीट-सरोवर क्षार-सर करै, महा दुखपीर ॥५२॥
कोट नकुल सम भावजे, यहै कलुषता पूर ।
रहैं पारधी पातकी, जे शुभ ते अति दूर ॥५३॥
तामस सो नहिं तिमिर है, राजस सम रज नाहिं ।
यह राजस तामस मई, सब दुख याके मांहि ॥५४॥

कमल न भाव अलेप से, तिनको सदा अभाव ।
कंटक नाहिं कषाय से, तिन को महा प्रभाव ।।५५।।
कंकर क्षुद्र स्वभाव जे, दीखें तेहि विशेष ।
नहीं रतन की बात तहां लखिये अशुभ अशेष[1]। ५६।।
भमर न भाव रसज्ञ से, तिनको नाम हु नाहि ।
दुष्ट भाव डासर घने, रंच न सुख सर मांहि । ५७।।
मच्छर भावहि मांछरा, माखी मलिन स्वभाव ।
कृमि कुभाव रूपी महां, सर मे बहुत लखाव ।।५८।।
भव वन मे विकराल यह, भ्रमसर विषसर होय।
है विभाव सर विषम सर, विष सर इसो न कोय।।५९।
शुद्ध निजातम भाव ते, भिन्न जेहि भव भाव ।
रागद्वेष मोहादि रिपु ते कहिये जु विभाव ।।६०।।
सदा विभाव तडाग तट, थावर जंगम जीव ।
लूटे जाहि अनेक जन, कूटे जाहि कुजीव ।।६१।।
कोयक मुनिवर ऊबरे, जिनवर को जन होय ।
सर विभाव सो विषम सर, और न जग मे जोय।।६२।।

---

१ सम्पूर्ण

इह विकलप सर वर्णना, उर धारे जो जीव ।
सो विकलप सर लंघ के, निरविकलप[1] हो वीर ।६३
निज स्वभाव सत्ता महा, सो निज दौलत होय ।
और न संपति सास्वती[2], यह निश्चय अवलोय[3] ॥६४

अध्यातम-वापी वर्णनम्

देय दया-निधि देव जो, दिव्य दृष्टि भगवान ।
दरसावे निज संपदा, सो सर्वज्ञ सुजान ॥ १ ॥
वंदनीक सब लोक गुरु, सकल लोक को ईश ।
रमै निजातम भाव में, नमूं ताहि नमि सीस ॥२॥
जहीं ब्रह्म विद्या जिसी, वापी अमृत रूप ।
वापी में पापी नहीं, मोह पिशाच विरूप ॥ ३ ॥
अध्यातम सा लोक मे, अमृत और न कोय ।
अध्यातम मय वापिका, त्रिविधि ताप हर होय ॥४॥
नहीं सिवाल संशय जहां, पाप पंक नहि लेश ।
नहि व्याकलता भाव कमि, मेटे सकल कलेश ॥५॥

---

१ विकल्प रहित: मोक्ष दशा में शांत । २ निरन्तर रहने वाली ३ समझो

भरी शान्त रस नीर तें, परमानन्द स्वरूप।
हरे दाह दुख दोष सब, रमे तहां 'चिद्रूप'[१] ॥ ६ ॥
नहीं विभाव वितर जहां, भर्म भूत नहीं होय।
रागादिक राक्षस महा, तिनको नाम न जोय ॥७॥
नहिं अविद्या वासना, सम कुवासना कोय।
सो न जा विषै है सही, समरस निर्मल तोय ॥ ८ ॥
दुख को लेश न है जहां, निजसुख पूरण मोय।
नाहिं कल्पना जाल मय, काई कलिमम[२] कोय ॥९
उज्वल निर्मल भाव से, परम हंस नहीं और।
केलि करैं तामे सदा, जा सम और न ठौर ॥ १० ॥
जहां सिावण प्रणाम से, अप्रमाण अतिरम्य।
अचल अखड अनूपमां नहीं अज्ञान की गम्य[३] ॥११
जोर न इन्द्री चोर को, मोर न कहूं सुनाव।
ठगि न सकै परपञ्च ठग, शुद्ध राव परभाव ।१२

---

१ ज्ञानी आत्मा २ पाप मय, कलंक युक्त.

३ पहुंच

भागे वंचक तस्करा, वापी को सुन नाम ।
रतन वापिका यह सही, गुण रतननि को धाम ॥१३
तटपार न विकार से, काम लोभ से वीर ।
तिनहि न सूझे वापिका, रमे महा मुनि धीर ॥१४॥
फूल रहे भावा कमल, अमल अलेप स्वभाव ।
रमण भाव रूपी भ्रमर, भमे सदा निरदाव[1] । १५।
ताके तट तरवर सुधा, भाव अछेद अभेद ।
शीतल सघन स्वास अति, डारे दाह उछेद[2] ॥१६।
समता रूप सदा लता, धरैं विमलता जोय ।
फल रही अति फल रहीं, सदा लहलहै सोय ॥१७।
परम भाव अमृत फला, भाव प्रफुल्लित फूल ।
पल्लव भाव प्रकाश मय, पत्र ताप हर मूल ॥१८॥
वेलि वृक्ष पीयूष मय, वापी तीर विशाल ।
माया वेलि न विष मई, एक न विकलप जाल ।१९
नाहि कुपक्षी कुशब्दा, विष वृक्ष न विषयादि ।
नहि कंटक क्रोधादिका, नहीं निशिचर मदनादि॥२०

---

१ निर्विघ्न २ मूल से नाश

है अनन्तता एकता, ये द्वु तट रमणीक ।
भोग भुजंग नहीं जहां, आतम सुख तहकीक [1]॥२१
मलिन भाव मछली नहीं, भेक[2] न भ्रांति स्वरूप ।
जहां कर्म कूरम[3] नहीं, वस्तु न एक विरूप ॥२२
कालिम कोट नहीं जहां, नहीं काल को जोर ।
अभय नगर के निकट है, जहां न कबहुं सोर ॥२३
नहिं दुजनता भाव मय, डाँबर माच्छर मूल ।
छुद्र भाव झींगर नहीं, वापी सब दुख दूर ॥२४॥
दंभ भाव बुग नहिं जहां, नहि वियोगी कोक ॥
सारिस-दर्शन-ज्ञान जुग, केलि करै बिनु शोक । २५
काग न भाव कलंक मय, राग रोग नहिं होय ।
शुद्ध स्वभाव मयी यह, नाहि शुभा शुभ होय ।२६
यह अध्यातम बावरी, नामे कर स्नान ।
सा भव दाह निवारिकै, पावै पद निर्वाण ॥ २७ ॥

---

१ निश्चय पूर्वक–लीन, मग्न २ मेंढक ३ कछुआ

विष वापी-वर्णनम्

वमै बुद्धि के पार जो, हरै कुबुद्धि कुभाव।
वीत राग सर्वज्ञ जो, तीन भुवन को राव ॥ १ ॥
प्रणमूं ताहि प्रमोदकर[1], प्रणमें[2] जाहि सुरेस।
नमै नाना सुर असुर, विद्याधर राजेस ॥ २ ॥
बुद्धि बावरी जीव की, विषय कषाय स्वरूप।
तिसी न विष की बावरी, और महा दुख रूप ॥३
विष नहि विषय विकार सो, भव भव मरण प्रदाय।
यह विष वापी या महै, पापी मोह रहाय।। ४ ॥
विषय वासना सारखी, नहीं कुवासना जोय।
अति कुवासना सों भरी, धर्म नाशना होय। ५ ॥
कर्दम कर्म कलंक सो, कहै न कोविद[3] कोय।
यह कर्दम की वापिका, जहां न अमृत तोय ॥ ६ ॥
मल नहि मिथ्या भाव सो, ताकर पूरण सोय।
अहंकार ममकार के, धरे विकट तट दोय ॥ ७ ॥

---

१ प्रसन्नता पूर्वक २ प्रणाम करते हैं ३ चतुर

भरी जाल जंजाल सों, मरी समान विरूप।
खरी बुरी दोषाकरी[1], विष वापी विड़रूप ॥ ८ ॥
जहां सिवाण अयान से[2], विषम महा दुख दाय।
कमी कुभाव अति कुलवलें[3], जाहि लखें तरषाय ॥९॥
नहीं सिवाल संदेह सों, भाखे संयम धार।
भरी सदा संदेह सों, सुख नहि जहां लगार ॥१०॥
वाचाली वादी विकल, दुर्बुद्धि दुर्भाव।
ते दादुर कुशब्द करें, धरे कुकर्म कुभाव ॥ ११ ॥
रसना लंपट चपल गति, हीन दीन अघलीन।
मीन तेहि विचरैं तहां, काल कीर अघलीन ॥ १२ ॥
कठिन कठोर स्वभाव ही, कहे काछुवा जीव।
कीट कलंक भरी सदा जामे बहुत कुजीव ॥१३॥
नून भाव अति रंकता, तेहि झींगरा जान।
झांझुर मच्छर भाव बहु, डांसर खलता मान ।१४
शान्त भाव सो विमल जल, और न जगत मंझार।
सो वापी मे नाहिं कहुँ, ताप हरण रस धार ॥१५॥

---

१ दोषों का भंडार २ अज्ञान समान ३ व्याकुल होवे

विष वेलि न ममता समा, वापी तीर विशेष।
सुधा वेलि समता मई, ताको तहां न लेश ॥१६॥
सघन भाव निज मगनता, तेहि सुधा तरु वीर।
ते वापी के तीर नहिं, अघ विष तरु अति तीर ।१७
दोष दैत्य को धाम है, रहैं भूत भ्रम रूप।
छलैं छुधाशा छल मई, ठगें काम रति भूप॥ १८॥
मोह निशाचर नृप जहां, पापी वापी बीच,
रागादिक रजनीचरा, अधिकारी अति नीच॥ १९॥
पाप पिशाच रहै जहाँ, जो धारै पर द्रोह।
चोरे चोर चहुं दिशा, राजै राजा मोह ॥२०॥
धन तृष्णा परिणाम से, तस्कर और न कोय।
तिन ही को यह थान है, कहाँ भलाई होय ॥२१॥
यह क्रीडा वापी नहीं, नहीं मनोग्यता मूलि।
करैं वास वंचक यहां, सदा अमंगल भूरि ॥ २२॥
बंचक और न विश्व में, दंभ प्रपंच समान।
पाखंडादि अनेक खल, छल बल भरे गुमान[1] ॥२३

---

1 गर्व

ठगे जाहि इन्द्रादिका, ठगे जाहि चक्रेश[1]।
ठगे जाहिं नागेंद्र सुर, ठगे जाहिं असुरेम ॥२४॥
लोभ लुटेरा लूटई, धर्म रूप धन सार।
क्रोधादिक कंटक घने, वापी बहुत असार ॥२५॥
विषय वासना व्यन्तरी, धरे विकार अनेक।
रति ठगिनी परपंच कर, खोसे रत्न विवेक ॥ २६ ॥
वापी भव वन में यहै पापी अंतक[2] सांप।
वसै सदा सुर नर असुर, पशुनी करे संताप ॥२७॥
यह गल कटा बावरी, जाने सब संसार।
रहै निर्दयी दुर्जना, क्रूर कुभाव अपार ॥ २८ ॥
हिंसक पशुन पशु घना, मिथ्याती मति हीन।
पर धन पर दारा हरा, लोभी लपट दीन ॥ २९ ॥
तेई करैं परवेश[3] यहां, रहैं सम्मती दूर।
कबहुं करै मति क्रीड तू, यहै कल्पना पूर ॥ ३० ॥
निर्मल भाव न हंस ह्यां, बुग ठग भाव अनेक।
दर्शन ज्ञान सुभाव से, सारिस जुगल न एक ॥३१॥

---

१ चक्रवर्ती २ यमराज ३ प्रवेश

रमै विषय अनुराग से, काग कालिमा रूप।
विकल विवेक व्यतीत खल, पापी पाप स्वरूप॥३२॥
पापाचारी पारधी, धीवर अघ परिणाम।
मारे तिर नर सुर असुर, थिर चर आठो जाम॥३३॥
निजपुर मों दूरी यहै, वापी अति विकराल।
बहु बूडे मर पचे, दुख देखे असराल॥३४॥
त्याग कषाय कलंक सब, तज विषयन सों प्रीति।
गहो पंथ निजपुर तनो[1] दहो[2] दोष दुखरीति॥३५॥
जीत काल कंटक सबा, मारि मोह रिपु राव।
रहो मोक्ष पुर मे सदा, प्रगट करो निज भाव॥३६॥
मिथ्यामति अति मूढ़ता, रूप वापिका तीर।
कदे रमे न विचक्षणा[3], वमें[4] विषय रस वीर॥३७॥
लहि निज संपति सासती, ज्ञाननंद स्वरूप।
करें केलि निज पुर विषैं, तज भव वन भय रूप॥३८॥

---

१ की ओर २ दलन करो ३ चतुर ४ त्याग देते हैं

अध्यातम अमृत भरी, वापी निवृति[1] जोय ।
करें स्नान तहां सुधी, लहैं विमलता सोय ॥३६॥
यह मूढ़ता वावरी, विषय प्रवृत्ति स्वरूप ।
नहिं स्नान को जोग्य है, मलिन विकट विषरूप॥४०॥
विष-वापी वर्णन यहै, पढै सुनै जो कोय ।
सो न परै वापी विषैं, घट घट व्यापी होय ॥४१॥

रस-कूप वर्णनम्

ज्ञायिक है सब भाव को, सब सुख दायक देव ।
नायिक है रस कूप को, करैं सुरा सुर सेव ॥१॥
रस कूप न निज रूप सो, परम सुधारस पूर ।
है अरूप अति रूप जो, सकल दोष ते दूर ॥२॥
नाहिं सुधा रस ज्ञानसों, अमरणकरण[2] अनूप ।
हरैं भ्रांति अति शांति कर, ताप हरण गुणभूप ॥३॥

---

१ संसार की विषय वासनाओं से त्याग २ संसार भ्रमण को छुड़ाने वाला

अवर[1] नाम रसकूप को, रतन कूपहू होय ।
रोर[2] अवोध[3] मिथ्यात हर, राग द्वेष-हर सोय॥४॥
अद्भुत गुण मणि सों भर्यो, यह मणि कूप महंत ।
रमवा जोग निरंतरा रमें मुनीश्वर संत ॥५॥
अमृत कूप निकूप यह निज भावनि की केलि
करै शुद्ध भव जीवको, देय दोष को टेलि ॥६॥
याके तटि अति सघन वन, चिद्-घन आनंद रूप ।
यहै कूप निज पुर निकट, जहां राव चिद्रूप ॥७॥
कपट कीच नहिं या विषै, रहै न मोह पिशाच ।
इन्द्री भूत न पाइए, मानवा रता सांच ॥८॥
जहां नाहिं चिंता मई, क्रमि कीटादिक कोय ।
मीन दीनता भावमय, तिनको नाम न जोय ॥९॥
नहि अविवेक स्वभाव मय, मींडक चपल विरूप ।
नहीं विषय की वासना, अति कुवासना रूप ॥१०॥
पर निंदक परपूठि[4] जे निष्ठुर दुष्ट स्वभाव ।
तेहि काछिवा जानिये, तिनको नाहिं लखाव ॥११॥

---

१ दूसरा २ दुलभ, शोर ३ अज्ञान ४ विश्वासघातक, धोखा देने वाले

मिथ्या मारग पक्ष धर, तेहि कुपक्षी क्रूर ।
ते न करै संचार यहां, हिंसक भाव न मूर ॥१२॥
दुर्जन भाव न दोषमय, दुखको नामहु नाहिं ।
सुख की बात अपार है, रमण कूप के मांहि ॥१३॥
नहीं सर्प कंदर्प[1] यहां, चोर न चाहि स्वभाव ।
छल परपंच न वंचका, विपरीती न विभाव ॥१४॥
दृष्टि न पसरे द्रव्य की, दैत्य न काल समान ।
एक न कंटक पाइये, क्रोध न लोभ न मान ॥१५॥
रमैं आतमा राम निज, सत्ता-रमा समेत ।
केलि कूप है द्रह[2] महा, संतन को सुख देत॥१६॥
लखि दौलत अविनस्वरा[3], परमभाव फल बेलि ।
निज दौलत लखियां विना, नहीं होय रस केल॥१७॥
इह वर्णन रस कूपको, पढै सुनै जो कोय ।
सो निकसे भव कूप मे निज रस रसिया होय ॥१८॥

काम देव २ बड़ा जलाशय ३ शाश्वत-नष्ट न होने वाली,

भव कूप वर्णनम्

प्रभु निकास भव कूपते, पहुँचावे निज थान ।
प्रणमें जाहि पुरंदरा[1] चक्रेश्वर निधिवान[2] ॥१॥
विष कूप न भव कूप सो, इह दुख कूप विरूप ।
अंधकूप यासो कहैं, महा मुनिन के भूप ॥२॥
जिसी अविद्या वासना, तिसी कुवास न कोय ।
भरयो महा दुर गंध सों, विषम कूप है सोय ॥३॥
विष नहिं विषय विनोद सो, मरण अनंत प्रदाय[3] ।
इह विष-पूरण दुख मई, जाहि लखे सुधि जाय ॥४॥
नहिं पियूष[4] ससार में, अनुभव सो अविकार ।
यहां न अमृत वारता, विकलप जाल अपार ॥५॥
कीच न कोई कुभाव सो, भरयो कीच तें कूप ।
लोभ पिशाच रहै जहां, मोहासुर है भूप ॥६॥
विभ्रम भूत घन तहां, दोष दस्य को थान ।
रागादिक रजनीचरा, विचरे पाप निधान ॥७॥

---

१ इन्द्र २ कुबेर जैसे धनवान ३ देने वाला ४ अमृत

नाग न पिशुन स्वभाव से, तिनको तहां निवास ।
धारन चित अभिलाष से, हरे धरम-धन रास ॥८॥
ठग नहि छल परसे-पंच, तिनही की ह्यां केलि ।
फूल रही अति विष मई, विषय वासना वेलि ॥९॥
याके तट विष वृक्ष बहु, विषय विकार विरूप ।
छाय रहे कंटक मयी, माया जाल कुरूप ॥१०॥
ठगे जाहिं सुर असुर नर, कोइक उबरे धीर ।
ज्ञान विराग प्रसाद ते, जा ढिग[1] संजम वीर ॥११॥
पापी जन पाखंड से, और दूसरे नाहिं ।
ते लूटें परगट यहां, रंच न संक धराहिं ॥१२॥
वटपार क्रोधादि से, मारें सुख पुर वाट[2] ।
ते डारें दुख कूप में तिनके क्रूर कुठाट ॥१३॥
नहिं विसासघाती अवर, मदन मारखो कोय ।
रंचक भोग दिखाय खल, दे अनंत दुख सोय १४
नहि सिवाल संसार मे, संयम शौच समान ।
भरयो आल जंजाल सो, मलिन कूप मल वान॥१५॥

---

१ पास २ रास्ता

चित्त वृत्ति चंचल मलिन, कृमि समूह है सोय ।
भर पूरित कृमि से सदा, तिमि कूप यह होय॥१६॥
नहिं डेडर वाचाल मे, उच्छलत फिरै कुभाव ।
मीन जीव लंपट जिसे, और न चपल स्वभाव॥१७॥
नहि कठोरता भाव से, कोई काछवा और ।
अंधकूप भवकूप यह, सदा तिनो की ठौर ॥१८॥
नाहिं सुधा तरु या निकट, केवल बोध स्वरूप ।
नाहिं ज्ञान अनुभूति है, अमृत वेली अनूप ॥१९॥
माया चारी मन मलिन, तेहि काग बग जान ।
तिनही की क्रीडा यहां, नाहिं सुपक्षी मान ॥२०॥
नहिं कोई शुचि बात ह्यां, सकल अशुचि की बात ।
काल समान न जालधर[1], करै जीव को घात ॥२१॥
परे जीव भव कूप में, को काटन समरथ्थ[2] ।
काढे श्री भगवंत ही, दया वंत बड-हत्थ[3] ॥२२॥

---

१ जाल को धारण करने वाला-शिकारी २ शक्तिवान्
३ बड़े हाथ (शक्ति) वाले

ढाण न नय परमाण सो, नहि निश्चै सी नेज ।
निकर्मं उद्यम वंत ही, जिनके रंच न जेज[१] ॥२३॥
अंधकूप विडरूप यह, है पाताल जू कूप ।
निकसि तहां ते तुरत ही, होय अभयपुर भूप ॥२४॥
फेरि न आवे भव विषै, निजमे करै निवास ।
लोक सिखर राजै सदा, धारै अतुल विलास ॥२५॥
निज दौलत निजगुण मई, सत्तारूप विभूति ।
सो विलसे अति सासती, अविनाशी अनुभूति॥२६॥
अंधकूप वर्णन यहै, पढै सुनो जो कोय ।
सो न रहै भव कूप में, निज निधि[२] नायक होय॥२७॥

अंतरात्मा-ज्ञान राज वर्णनम्

अन्तर गति ज्ञाता गुरु, अ तर जामीं देव ।
अन्तरात्मा ध्यावहि, करै सुरासुर सेव ॥१॥
ताके चरण सरोज नमि, प्रणमि महा मुनिराय ।
नमि परमागम[३] गुण कहूं, ज्ञानिन के सुख दाय॥२॥

---

१ ढील-देर २ आत्म ज्ञान ३ प्राचीन शास्त्र

भ्रमत भ्रमत भव-वन विषै, कौयिक चेतन गात्र।
चेतहि सुतः[1] स्वभाव ही, कै श्री गुरु परभाव ॥३
तज अज्ञान अनादि को, ग्रन्थि अविद्या भेदि।
धारि मरधा सर्वज्ञ की, संशय भर्म उच्छेद[3] ॥ ४ ॥
छांडि भूमि मिथ्यात्व की, क्रोध लोभ छल मान।
मार चौकरी प्रथम हि, ले सम्यक गुण थान ॥ ५ ॥
तथा देश-व्रत देश ले, दोय चौकरी मार।
अप्रमत्त थानक तथा, तीन चौकरी मार ॥ ६ ॥
सम्यक पुर को आदि ले, क्षीण कषाय पर्यंत।
अन्तरात्मा राजई, राज करैं मति वत ॥ ७ ॥
तासम भूप न और को, समझ वार रिझवार[3]।
सो निकसै भव कूपतें, पावै पद अविकार ॥ ८ ॥
पटरानी परवीन है, नाम सुबुद्धि अनूप।
गाढ़ सम्यक अति निश्चला, मंत्री ज्ञान स्वरूप ॥९॥

---

१ स्वतः—अपने आप २ मूल से नाश

३ प्रसन्न होने वाला

गुरु विवेक प्रोहित धरम, दर्शन चारित्र दोय।
सब उमरावनि के सिरैं, अति कोटी भट होय ॥१०
निज स्वभाव उमराव बहु, निज-निधि है भंडार।
है धीरज सैन्यापति, भंडारी स्वविचार ॥ ११ ॥
संजम तप आदिक सुभट, गुण सैन्या अति साथ।
द्वार पाल संवर महा, ध्यान खड्ग नृप हाथ ॥१२॥
व्रत बगतर,[1] अर शील सर[2] धीरज धनुष महीप,
धारैं मनमथ[3] मारने, शूरवीर अवनीप[4] ॥ १३ ॥
अनाचार-हर नीति-धर, सुआचार कुतवाल।
मूलोत्तर गुण है प्रजा, सावधान भूपाल ॥ १४ ॥
पावन पुन्य स्वभाव मे, पासवान परवीन।
टारैं पाप सुभाव को, सदा स्वामि आधीन ॥१५॥
मित्र महा वैराग से. हितकारी नृप पास।
मदन भगति भगवंत की, दे सब सुख अघनास ॥१६

---

१ कवच २ शर, बाण ३ मन को मथने वाला—कामदेव ४ राजा

नृप के अद्भुत अनुपमा, मामग्री सामन्तादि।
हारे जातें मोह रिपु, डरैं राग द्वेषादि ॥ १७ ॥
अव्रतपुर अर देश-व्रत, इन माहि गढ़ रारि[1] ।
परमतपुर आगैं प्रगट, लहि मोह को मारि । १८
कैसे मारैं मोह को, सो तुम सुनहु उपाय।
अप्रमादपुर मे हयों, सुर नारक तिर आय ॥ १९ ॥
भाव अपूरव-करण पुर, तहाँ हते हास्यादि।
अनिव्रतापुर मे हणे, वेद तीन संडादि[2] ॥ २० ॥
पाछै सूक्ष्म क्रोध अर, मान कपट रिपु काटि।
सांपराय सूक्षम धरा, लेय मोह दल दाटि ॥ २१ ॥
सूक्षम लोभ पछारकै, पूरो पारे मोह।
भंग होहि भूपाल पै, राक्षस रागर[3] द्रोह ॥ २२ ॥
क्षीण कषाय जतीपती[4], क्षीण मोह मुनि राज।
हते विघन को बेग दे, सजै सिद्धि के साज ॥ २३ ॥

---

१ घनी लड़ाई २ बलिष्ठ ३ राग और ४ यति-मुनि ब्रह्मचारी आदि

दर्शन ज्ञानावर्ण को, प्रकृति सवै विनाश।
साधक भाव समेटि ले, केवल भाव प्रकाश ॥ २४॥
घाति कर्म को घातिके[1], ह्वै केवल्य स्वरूप।
अंतरात्मा पद थकी, ह्वै परमातम रूप ॥ २५।
जैसे राजा नीति करि, महाराज ह्वै वीर।
जैसे अंतर आत्मा, ह्वै परमातम धीर ॥ २६ ॥
जाने लोक अलोक सहु, एक समय में सोय।
भाजैं संशय भविनि[3] के, केवल ज्ञानी होय ॥२७॥
ज्यों नरेन्द्र राजेन्द्र ह्वै, धार पराक्रम धीर।
त्यों जोगिन्द्र जिनेन्द्र ह्वै, आतम बल कर वीर ॥२८
आयु प्रमाण शरीर में, तिष्टै सर्वज्ञ देव।
जीवन-मुक्ति-दशा[4] धरै, करै सुरासुर सेव ॥ २९ ॥
कर दर्शन[5] सुन शब्द[6] को, उत्तम करु नर देह।
कै यम तपव्रत धार कै, मुनिवर होय विदेह ॥ ३० ॥

---

१ नाश कर २ दूर करैं ३ भव्यों से ४ संसार में रहते हुए भी विरक्त ५ सम्यग्दर्शन ६ उपदेश-ज्ञान

कैयक मानव तिर[1]तथा, धार अनुव्रत सार।
स्वर्ग जाय नर होय फिर, तपकर ह्वै भवपार ॥३१॥
कैयक सुर अथवा असुर, गहि कर सम्यकज्ञान।
कर पूरण तिथि होय नर, पावै पद निर्वाण ॥३२॥
स्वर्ग निवासी देव जे, ते स्वर नाम बखान।
मध्य लोक पाताल के देव असुर परिवान ॥३३॥
देव योनि के भेद हैं, देव दैत्य द्वै रूप।
स्वर्ग निवासी बहु सुखी, दीरघ आयु स्वरूप ॥३४॥
मंद कषायी हर्ष अति, अल्प विषाद विवाद।
सब बातन में अति निपुण, धारे अल्प प्रमाद ॥३५
असुर अल्प सुख अल्प तिथा[2], तीव्र कषाय प्रचंड।
अति विषाद अतिवाद है, अल्प बुद्धि अति दंड ॥३६
सुर नर असुर विद्याधरा, पंचेन्द्रिय पशु जेहि।
नभ चर वन चर ग्राम चर, निकट भव्य सुलटेहि ।३७
होहि कृतारथ सब्द सुन कर दर्शन बहु जीव।
कैयिक तद्भवपार[3] ह्वै, मनुज मुनीन्द्र सुजीव॥३८

१ तिर्यंच २ स्थिति–आयु ३ इसी भव शरीर से पार हो जाते है–जैसे तीर्थंकर

कैयक जन्मान्तर तिरै, पावै निजपुर वास ।
सुख दाई संसार मे, केवल ज्ञान प्रकाश ॥ ३९ ॥
तारण तरण दयानिधि, जीवन मुक्ति मुनींद्र ।
आयु मात्र ही गात्र मे, वसें देव जोगिन्द्र ॥ ४० ॥
इन्द्र चन्द्र असुरेन्द्र अर, रवि नरेन्द्र नागेंद्र ।
हर रिषींद अहमिंद्र खग, रटै जतीन्द्र गणेन्द्र ॥४१
आयु ला रही गोत्र को, नाम रूप को नाश ।
वादर सूक्षम गात्र-हर, वेद न कर्म विनाश ॥४२॥
कर्म भर्म हर शुद्ध ह्वै, वसै भावपुर माहि ।
सो विदेह मुक्तो प्रभु, कहिये संशय नाहि ॥ ४३ ॥
ज्ञान रूप चिद्रूप सो, ह्वै अनूप जग भूप ।
फेर न जन्मै जगत मे, ह्वै अविनाशी रूप ॥ ४४ ॥
थूल देह अर सूक्ष्मा, बहुरि न धारे धीर ।
ह्वै आनन्द स्वरूप निज, चिन्मूरति असरीर ॥४५॥
जगत शिरोमणि भाव पति, लोक शिखर सद्रूप ।
निज स्वरूप में नित्य ही, करै निवास अरूप ॥ ४६ ॥

अंतर आतम राम की, कथा प्रबोध प्रकाश।
पढ़े सुने अर सरदहे[1], सो पावै शिव वास[2] ॥४७॥
निज दौलत अनुभूति है, ताहि विलसवे काज।
छोड़े राज विभूति सब, सो पंडित सिरताज ॥४८॥

बहिरात्म-दशा-वर्णनम्

बहिर मुखा बहिरात्मा, लखै न जाको रूप।
अंतरात्मा अति रटै, सो परमातम भूप ॥ १ ॥
कर वंदन ताके चरण, लेय शरण सिद्धांत।
भाखों बहिरातम दसा, दोसरूप एकांत ॥ २ ॥
मूढ महा बहिरात्मा, धरे दृष्टि बहिरंग[3]।
गिनें आपने कर जड़, गिनें आपनो अंग ॥ ३ ॥
तासम शठ नृप और नहि, करे राज वे ढंग।
बारावाट[4] कुठाट सब, सदा कुबुद्धि संग ॥ ४ ॥
पराधीन वरतै महा, नहीं गात्र को जोर।
राव मोह के फन्द में, परयो सहै दुख घोर ॥ ५ ॥

---

१ श्रद्धा करें २ मोक्ष ३ सांसारिक ४ अस्त व्यस्त

राज थाम नहि निश्चला, भटके भव वन माहिं ।
सुर नारक पशु पुरा, थोरे दिन रहवाहिं ॥ ६ ॥
काढ़े कर्म महीप को, देह गेह ते वेग ।
सहा भोगवें भूप दुख, नहीं राज बल ..ग[1] । ७ ॥
तेगन ज्ञान ज्योति सी, सो नहीं नृप के हाथ ।
कायर कुटिल कुभाव सहु, ते भूपति के साथ ॥८॥
काची गद्दी न काय सी, बिना थके विनसाय ।
धर्म तामहँ भयमयी, अलप काल रहवाय ॥ ९ ॥
मोह वसाय अनादिको, भ्रमे भूपाल अयाण[2] ।
इक छोडे इक पुर गहै, मोह आण[3] परमाण ॥१०
कुबुद्धि सारखी और नहि, जग में कोई कुनारि ।
सो पटरानी राव के, वैरी राज बिगारि ॥ ११ ॥
घरखोवा[4] घरणी यहै, कलह कारणी जोय ।
पापारम्भ प्ररूपणी, कहाँ भलाई होय ॥ १२ ॥

---

१ तलवार २ अज्ञान ३ अन्य ४ घर को बिगाड़ने वाली

भयो कुमति के भूप वश, नहीं वुद्धि को लाग ।
परयो राव परमाद में, नहीं धरम को राग ॥१३॥
महा मोह निन्द्रा जिसी, निद्रा और न नीच ।
सोवे शठ भूपति सदा, मोह नीद के बीच ॥१४॥
घूमै नृप वेसुध भयो, मोह वारुणी पीय ।
परयो भर्म की पांसि मे, पिरथीपति[1] टुक[2] जीय॥१५॥
कुबुधि सुता है मोह की, जाई ममता मात ।
चाहे मोह प्रकाश ही, अति अघ सों न डरात ॥१६॥
नहिं प्रताप पति को चहै, नहिं पति को बिश्वास ।
डरैं कुबुद्धि सुबुद्धि ते, धरे मोह की आस ॥१७॥
है कुभाव मंत्री कुटिल, मोह मिलाहु जोय ।
नृप को उदय न वांछई, स्वामी द्रिरोही[3] सोय॥१८॥
विषयन के अनुराग में, राख्यो राय लगाय ।
रमे सदा सब कुमति वश, सुधि बुधि सब विसराय॥१९॥
नहि कुभाव सो कलि विषैं, और कुमंत्री कोय ।
चोरन को पूठी[4] रखा, कहां भलाई होय ॥२०॥

---

१ राजा २ तनिक ३ द्रोह करने वाली ४ पीछे

द्वारपाल दर्वार मे, परमादी परिणाम ।
रोके नहि अपराध को, रोके विधि को नाम ॥३७॥
दुराचार कुटवाल है, सेठ महा शठ भाव ।
बहुरि महा अन्याय मे, जहां मीर उमराव ॥३८।
कुव्यसन सैन्या हैं, जहां बस्ती जहां विभाव ।
हैं फैलाव कुभाव को राव, करैं नहि न्याव ।३६॥
भोग भावना भर्म में, भपहि दियो भमाय ।
करै कामदागी कुमन, सुमनहुं रुकै न आय ॥४०॥
छल प्रपंच पाखंड अर पिशुन धूर्त खल भाव ।
पेसगार ये कुमन के, चाहैं कुबुद्धि कुभाव ।४१॥
फैल रहे बद फैल[1] महु, मैल भरे तहकीक[2] ।
खेल मचि रह्यो पुर विषे, बोलै वचन अलीक ॥४२॥
अपने अपने स्वारथी, नही स्वामी को पीर ।
राज दाव लियो अरयां, सुभट न नृप के तीर ॥४३॥
ज्ञानावर्ण जु कर्म खल, मित्र मोह को येह ।
ज्ञान शक्ति दाबे सबै, दे दुख दोष अछेह ॥४४॥

---

१ दुराचार २ निश्चय रूप में

दर्शन आवरणी कर्म, दग अवरोध करेय ।
भाव भटन वो भूप को, दर्शन हीन - देय ॥४५॥
कर्म वेदनी बलवता, महा मोह के जोर ।
करै असाता जीव को, करवावै अति स्रोर ॥४६॥
कबहुक साता देयके, तुरत खोस ही लेय ।
सुख न अनिद्रो[1] हो न दे, भव भव कष्ट करेय॥४७॥
लाग्यो काल अनादि को, नृप को मोह पिशाच ।
थावर जंगम योनि में, करवावें बहु नाच ॥४८॥
एक ठौर रहने न दे, मोहासुर असुरेस ।
कबहुंक सुर नर पशु करै, कबहु नारक भेष ॥४९॥
आयु नाम है कर्म इक, सह चर मोह नरेस ।
जीव अमर सो अलप थिति, कर राख्यो राजेश॥५०॥
नाम कर्म नामा[2] कम, नाना देह धराय।
भरमावे नर नाथ को, हुकम मोह को पाय ॥५१॥
गोत्र कर्म अति भर्म जो, जीवहि मोह वशाय ।
ऊंच नीच गोत्रादि मे, लघु दीरघ करवाय ॥५२॥

---

१ सावधान २ नाम वाला-बड़ा

अंतराय दुख दायति, मोह राय परसाद ।
जीव राय को जगत में, करै अनेक विषाद ॥५३॥
विघन करै आनंद में, मगन होन नहि देय ।
विषनें बुरे जु कर्म वसु¹, भव भव प्राण हरेय॥५४॥
क्रोध मान माया मदन, लोभ हांस रति शोक ।
अरति जुगुप्सा मोह के, सुभट रहे है रोक ॥५५॥
जान देहि निजधाम नहि, राखे जगत मझार ।
नरक निगोदादिक दुखा देहि अनंत अपार ॥५६॥
कृमि कीटादिक जोनि मे, जामण मरण कराय ।
कारागृह मे नृप परयो, दुख देवे अधिकाय ॥५७॥
छूट सके नहि बंधते, रहै बहुत बेहाल ।
खैंच्यो विषय कषाय को, भटकत फिरै भुपाल॥५८॥
टिक न सकै गढ बांधिके, लरि न सकै बलहीन ।
चउरासी लख जोनिमें, भ्रमण करै अति दीन॥५९॥
निजपुर आतम भाव जो, तहां सकै नहि जाय ।
भव कांतार अपार में, भरमे भोंदू राय ॥६०॥

---

१ आठ कर्म

काल अनंतानंत में, कबहुंक सुरपद होय।
सुर-भव तें मानुष जनम, अति दुर्लभ है सोय॥६१॥
एकेंद्रिय विकलत्रया, पशु नारक दुख रूप।
जन्म अनंत निगोद में, धरैं मोह वश भूप ॥६२॥
कबहुंक कोयक जीव की, भ्रांति दूर ह्वै जाय।
जाने निज विरतांत सो, ठाने मोक्ष उपाय॥६३॥
पूरण भाग प्रभाव तें, सत गुरु दर्शन होय।
करैं वीनती तब यहैं, सुनैं दया कर सोय ॥६४॥

जीवो वाच

स्वामिन यह संसार है, अति असार भ्रम-जार।
भरमूं तामें मोह वश, लहूं न भव जल पार ॥१॥
कैसे पहुंचू निजपुरा भ्रमण मिटै किम नाथ।
मोह पास टूटै कबैं, अवलोकूं निज साथ ॥६६॥
सो उपाय भाखो प्रभू, तुम हो करुणा सिन्धु।
लूट सकै नहि मोह खल, छूट जाय सब बंध ॥६७॥

श्री गुरु उवाच

तूं अनादि बंध्यो भया, भ्रम कर भव के माहिं ।
निज स्वरूप निज भाव तज, तें अवलोके नाहि॥६८॥
सुबुद्धि महाराणी शुभा, पतिवरता परवीन ।
ताकि तोहि न सुधि कछु, ता बिन तूं अति दीन॥६९॥
है प्रबोध[1] मंत्री महा, ताको तोहि न भेद ।
इक छिन मे सो साहसी, करे करम दल छेद ॥७०॥
भाव अनंत महा भटा, मोह विदारण सूर ।
कुबुद्धि कुभाव प्रभाव ते, रहतो थांको दूर ॥७१॥
बैठे सर्व विवेक पै, जहां सुबुद्धि प्रबोध ।
तेरे पुरमे सब ही, बशे विभाव अबोध ॥७२॥
पटरानी तेरे बुरी, कुबुद्धि कलंक निवास ।
बुरो कुभाव प्रधान है, धरै मोह की आस ॥७३॥
बैठी सुबुध अनादि की, घर विवेक के वीर ।
तेरे शुभ चिंतक सबै, है विवेक के तीर ॥७४॥

---

१ विवेक

करै राज बे ढंग तूं, निज पर की सुधि नाहिं ।
अविवेकी अज्ञान तूं, होय रह्यो भव माहिं ॥७५॥
छांडि कुबुद्धि को संग अब, मेल्हि मोह के याहिं ।
निज वश कर मन चपल कों, डाट कुभाव उठाहि ।७६।
वस्ती काढि विभाव की, काम क्रोध को ठेलि[1] ।
तोर मोह की पांसि अब, तज कुबुद्धि की केलि॥७७॥
सम्यक गढ में वास कर, लेहु सुबुद्धि बुलाय ।
करहु दूरि मंत्री कुमन, ज्ञान मंत्रि ठहराय ॥७८॥
कीर विवेक को राजगुरु, पापहि तुरत उथाप[2] ।
प्रोहित पद दे धर्म को, शुद्ध स्वभाव सथाप[3]॥७९॥
सैन्यापति तप संयमा, भटकरि अपने भाव ।
निज प्रभाव उमराव कर, यह उपाय है राव ॥८०॥
शुभाचार कुटवाल कर, दुराचार सहु मेटि ।
दर्शन रूप उघारि दृग, चारित्र सज्जन भेट ।८१॥
हरहु प्रभाव विभाव को, मोह राव की काणि[4] ।
नति राखो महिपाल सुम, गुरु आज्ञा उर आणि॥८२॥

---

१ दूर करके २ उखाड़ कर ३ स्थापित करके ४आज्ञा

एक न राखो मोह को, मन तन को परसंग ।
निज स्वभाव मे ना करे, करहु करम दल भंग ।।८३।।

राज करहु निजपुर विषै, अटल अचल सुख रूप ।
जहां न वश है मोह को, नहीं काल को भूप ।।८४।।

राज विगारा दूर कर, राज सुधारा लेहु ।
यह उपाय कर राय तूं, ममता भाव हरेहु ।।८५।।

काया काची है गढी, जहां काल को जोर ।
रहनो जामें मोह वश बलि काम से चोर ।।७६।

तज काया गढ सर्व ही, सूक्ष्म और स्थूल ।
कर निवास निजपुर विषे, यह बात सुख मूल ।।८७।।

सुनी सुगुरु की वार्ता, उर धारी भव जीव ।
बुद्धि प्रबोध प्रभाव कर, त्यागे भाव अजीव ।।८८।।

कियो राज कंटक रहित, फेर न विन मे राज ।
यह बात जे उर धरें, करै निजातम काज ।।८९।।

गुरू आज्ञा धारे नहीं, तजे कुबुद्धि कुभाव ।
ते अभव्य जन जानिये, तथा दूर भवि राव ।।९०।।

बहिरातमता त्याग के, अंतरात्मा होय ।
सो परमातम पद लहैं, यह निश्चय अवलोय ॥६१॥
बहिरातम को वर्णना, जोहि सुने धर कान ।
सो बहिरातमता तजै, पावै आतम ज्ञान ॥६२॥
निज लक्ष्मी लख्यां विना, है बहिरातम वीर ।
दौलत निज अनुभूति लखि, तिरैं भवो दधि नीर॥६३॥

बहिरात्मा-वर्णनम्

त्याग जोग पर वस्तु जे, हेय कहावे तेह ।
लेन जोग निज भाव जे, उपादेय है येह ॥१॥
हेय[1] उपादेयानि[2] को, जो विचार अविकार ।
सो विवेक भाषै बुधा, ता सम और न सार ॥२॥
पढ़ै सुने अरु सरदहे[3], यह जु विवेक विलास ।
सो अविवेक निवार के, पावै निजपुर वास ॥३॥
निजपुर सो नहिं कोई पुर, जहाँ काल भय नाहि ।
कर्म न भर्म न कल्पना, सुख अनंत जा माहिं ॥४॥

इति विवेक विलास सम्पूर्ण

---

१ त्यागने योग्य २ ग्रहण करने योग्य ३ श्रद्धा करे